५ रुपये

वर्षा

१४ सितम्बर १९९०

जीवनीय

लोक स्वास्थ्य की द्वैमासिक पत्रिका

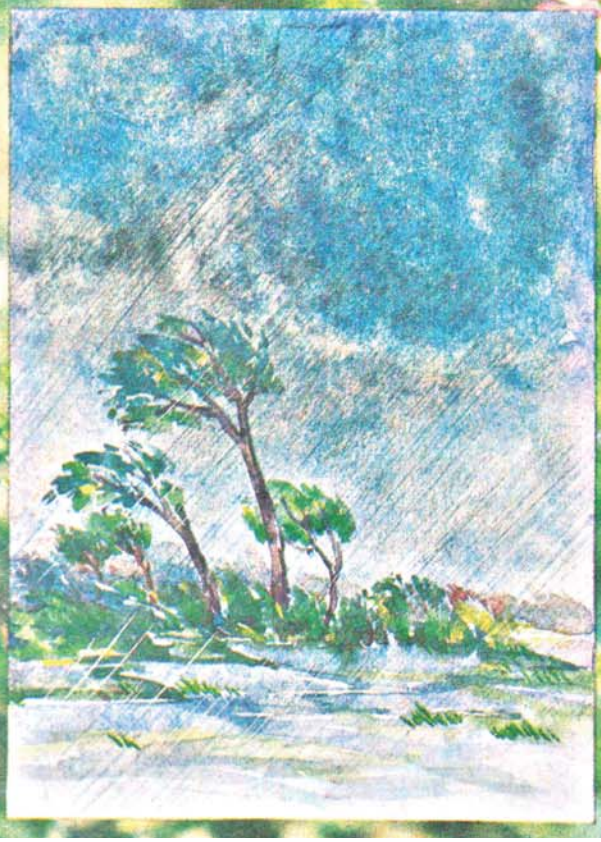

पथरी में लाभकारी गोखरू

दमा से बचाव

सहज उपलब्ध पुनर्नवा

अंतराष्ट्रीय महत्व की ईसबगोल

बच्चों के कृमि रोग

जीवनीय
द्वैमासिक

कार्यकारी सम्पादक
डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादक मंडल
वैद्य राजकिशोर मिश्र
वैद्य शिवकुमार मिश्र
वैद्य नारायण दत्त मिश्र
वैद्य उपेश चन्द्र शर्मा
डा. हरि प्रकाश शर्मा
डा. रवि कुमार शर्मा
डा. पारस नाथ मिश्र
डा. (श्रीमती) शैला चन्द्रा
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
श्री रोमेलो मालवीय
डा. निरंजन चंद्र शाह
वैद्य लक्ष्मीकान्त कुलकर्णी
डा. मोहन बांडे
हकीम एहतेशामुल हक कुरेशी

संयोजक
पं. माधवाचार्य

साज-सज्जा
श्री अली कौसर

कार्टून
श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव

इस पत्रिका के लिए कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं।

संपादकीय कार्यालयः
लोक स्वास्थ्य परम्परा संवर्धन समिति,
सी-३/५ रिवर बैंक कालोनी, लखनऊ

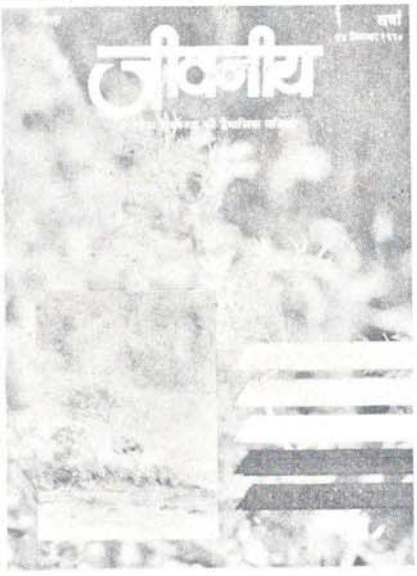

मुख पृष्ठ का पौधा-पित्तपापड़ा

वर्ष - 1, अंक - 1

16 जुलाई - 15 सितम्बर 1990

कम्पोजरः बांगा कम्पू प्रिन्टर्स
११ बी, प्रथम तल, प्रिन्स कॉम्पलेक्स,
हज़रतगंज लखनऊ २२६ ००१

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा २५७ गोलागंज लखनऊ से मुद्रित तथा सी-३/५ रिवर बैंक कालोनी, लखनऊ से प्रकाशित, संपादक - डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादकीय सलाहकार समिति
वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानन्द पाण्डे, नई दिल्ली
वैद्य (श्रीमती) श. कोपिकर, बम्बई
वैद्य रमेश म. नानल, बम्बई
वैद्य नरेन्द्र सो. भट्ट, बम्बई
वैद्य रामहर्ष सिंह, वाराणसी
डा. गीता बामेज़ई, वाराणसी
हकीम सै. खलीफतुल्लाह, मद्रास
डा. मनमोहन लाल, लखनऊ
वैद्य भा. वि. साठे, नागपुर
श्री गंगा राम जानू आवारी, नासिक
वैद्य ह.श्री कस्तूरे, गांधीनगर
वैद्य टी. आर. आनन्दलवार, मैसूर
डा. उमा, बंगलूर
सिद्ध वैद्य के. नटराजन, मद्रास
हकीम सैफुद्दीन अहमद, मेरठ
वैद्य बृहस्पति देव त्रिगुण

जीवनीय के चंदे की दरें

एक प्रति ५ रु.
वार्षिक २५ रु.
द्विवार्षिक ४५ रु.
त्रैवार्षिक ६५ रु.
(चंदा डाकखर्च सहित है)

Jeevaniya Society
474A/60, Brahma Nagar
Sitapur Road, Lucknow-226020
Ph.: 7668398167

संपादकीय

एक बार फिर वर्षा आ रही है। बिजली की कौंध और बादलों की गर्जनाओं से संभवतः सरकारी तंत्र फिर जागेगा। सूखे की विपदा से मारे कई गरीब क्षेत्रों में वर्षा और फिर बाढ़ भी आ सकती है। हमारे नगरों में और गांवों में भी गंदा पानी, कीचड़ इकट्ठा होकर आंत्रशोथ, हैजा, दस्त बुखार व पीलिया जैसी कई बीमारियों को महामारी का रूप भी हर वर्ष की भांति दे सकता है। हस्ब-मामूल, एक बार फिर सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के तंत्र की निद्रा टूटेगी- पेयजल मुहैय्या कराने वाले कार्यक्रमों की फाइलें तेजी से घूमेंगी। कहीं पानी के साधन जमीन पर मुहैय्या कराए जायेगें तो कहीं फाइलों में ही कार्यक्रम पूरे हो जाएंगें।

यद्यपि हम यहां वर्षा के कारण बढ़ते बाढ़ के प्रकोप के कारणों जैसे जंगलों की कटाई, सिंचाई के साधनों का केन्द्रीकरण बड़े बांध आदि पर समीक्षा नहीं कर रहे हैं पर हम यह प्रश्न अवश्य पूछना चाहते हैं कि सरकारी तंत्र की निद्रा विपत्ति के भयानक रूप लेने से पहले साधारणतया क्यों नहीं टूटती?

यह हो सकता है कि हमारा तंत्र अपने रोजमर्रा के कार्यों में इतना अधिक व्यस्त रहता है कि उसे आगे की सोचने की फुरसत ही नहीं मिलती या दूरगामी प्रभाव के कार्यक्रमों की सफलता से समस्याओं में कमी होने के कारण सरकारी कार्यक्रमों (या अधिकारियों) के महत्व में कमी होने की संभावना रहती है। या फिर दूरगामी प्रभाव के कार्यक्रमों के असरकारी होने के लिए लोगों की भागीदारी आवश्यक है जिसकी भाषा सरकारी कार्यक्रम समझ ही नहीं सकते। या फिर लोगों की भागीदारी वाले ऐसे असरकारी कार्यक्रमों से भला "सरकारी" तंत्र को क्या लाभ? इन सभी संभावनाओं के रहते ऐसे दूरगामी प्रभाव के कार्यक्रम सरकारी तंत्र से परे ही रह सकते हैं।

यद्यपि ऐसी विपदाओं के फलस्वरूप बने "आकस्मिक" कार्यक्रमों में काफी "सरकारी" तेजी होती हैं- जल्दी से रूपरेखाएं बनती हैं जिनकी समीक्षा बड़े अधिकारी व नेता-मंत्री भी करते हैं। जल्दी से धन-संसाधन मुहैय्या कराने के लिए राजनीतिक और सरकारी तंत्र व्याकुल हो उठता है और आखिर क्यों न हो, इन आकस्मिक कार्यक्रमों को पूरा करने की जिम्मेदारी लेने वाले ठेकेदारों से सभी का भला होता है जनता का भी और जनार्दन का भी।

पर इन अधिकांश आकस्मिक कार्यक्रमों से समस्याओं के मूल पर शायद ही कभी असर पड़ता हो, जिसके कारण हर वर्ष देश में वर्षा- बाढ़ के विनाश से मरे हजारों लोगों- बीमार हुए लाखों लोगों और कराड़ों- अरबों की धन संपत्ति की हानि की पुनरावृत्ति मानों एक नियति बन गई है। वर्ना इस देश की भौगलिक विविधता के कारण उपलब्ध तमाम वनौषधियों और वनों की ओर समुचित ध्यान क्यों नहीं दिया जाता? पेयजल की समुचित व्यवस्था और पानी की निकासी और सफाई के कार्यक्रमों की ओर से हम इतने उदासीन क्यों हैं? प्राथमिक स्वास्थ और सामुदायिक स्वास्थ्य के कार्यक्रमों में जन-जन की भागीदारी का प्रयास क्यों नहीं किया जाता और जनसाधारण की समझ और उपयोग में आने वाली देशी चिकित्सा पद्धतियों को बढ़ावा नहीं दिया जाता? संभवतः यह अब इस कारण भी हो रहा है कि इस देश का जन-जन ही नही प्रबुद्धजन भी सभी समस्याओं के समाधान के लिए न सिर्फ सरकार का मुंह ताकता है वरन् जो भी "सरकारी" समाधान प्रस्तुत होता है उसे चुपचाप असरकारी भी मान लेता है।

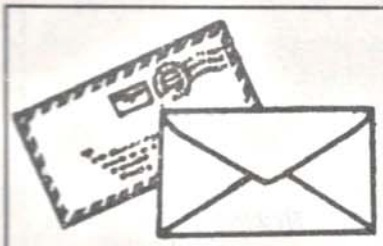

पाठकों के पत्र

संपादक महोदय,

जीवनीय का ग्रीष्म अंक (जुलाई ९०) पढ़ा। यह अंक बहुत ही अच्छा रहा। इसमें प्रकाशित सभी लेख एक से बढ़कर एक उपयोगी है। यह मेरा सौभाग्य ही है कि मैं बहुत जल्द इसका वार्षिक सदस्य बन गया। अब मैंइस पत्रिका का आजीवन सदस्य बना रहूंगा तथा अन्य लोगों को भी इसे पढ़ने के लिए प्रेरित करूंगा। आपने इस पत्रिका को प्रकाशित कर बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। मेरा सुझाव है कि आप इस पत्रिका को प्रतिमाह प्रकाशित करें।

राजीव रंजन सिन्हा, किशनगंज (बिहार)

पत्रिका के लिये कुछ मेरे सुझाव हैं – मिरगी रोग पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित करें। अनुभूत नुस्खों को भी दें।अनुसंधानों से परिचित करावें। हरसिंगार, कचनार, अगस्त्य आदि गृह वाटिका के वृक्षों पर प्रकाश डालें। पोषण संबधी जानकारी भी पत्रिका में दें।

– डा. हरिहर प्रसाद गुप्त, इलाहाबाद।

एक वर्ष में ही जीवनीय को आदर और स्वीकृति के जिस स्तर पर तुम्हारे और सहयोगियों के अथक श्रम ने प्रतिष्ठित कर सकने में सफलता पाई है उसके लिये बधाई। जुलाई ९० के अंक के सम्पादकीय में निम्न दो महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर संकेत किया गया है – जानकारी का वैज्ञानिक आधार और भाषा की अग्राह्यता। वे मेरे मन में भी उठ रहे हैं। इन दोनों प्रश्नों की ओर बराबर ध्यान बना हुआ है : यह संतोषजनक है, तुम्हारे कुशल और निष्ठावान हाथों में पत्रिका उन्नति के नित नये छोर छुएगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

श्री विनोदबिहारी लाल, नई दिल्ली।

आप का मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य विशेषांक पढ़ा। विशेष तौर से बहूपयोगी हल्दी एवं हल्दी वानस्पतिक ज्ञान एवं आधुनिक शोध लेखों को पढ़ने से हल्दी के औषधीय प्रयोगों की जानकारी मिली।

आप से अनुरोध है कि यह भी स्पष्ट रूप से जानकारी देने की कृपा करें कि साधारण हल्दी में कैरक्यूमिन नामक रसायन है या नहीं, क्योंकि शोध कर्ताओं ने विशेष प्रजातियों का उल्लेख किया है जिससे भ्रम उत्पन्न होता है।

हल्दी का अर्क बनाने की विधि बताने की कृपा करें।

विष्णु कुमार कपूर, लखनऊ।

जीवनीय पत्रिका (ग्रीष्म) का अवलोकन किया। पत्रिका वर्तमान समय के लिये अत्युत्तम है। समयानुसार लेख इसमें प्रकाशित होते हैं। यह एक श्रेष्ठ बात देखने में आयी। इस अंक का लेख 'बार–बार होने वाले गर्भपात की घरेलू चिकित्सा' सर्वश्रेष्ठ लगी। इस लेख के लेखक को हमारी ओर से धन्यवाद प्रेषित करें।

आचार्य किशोर मोहन शर्मा बुलन्दशहर।

आप द्वारा सम्पादित आरोग्योपयोगी द्वैमासिक पत्रिका "जीवनीय" का मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य विशेषांक एक उत्कृष्ट उपहार है। इसमें माताओं के गर्भकाल में खानपान, सावधानियां, शिशु के लालन पालन, देखरेख स्वास्थ्य व उनके विविध रोगों से सम्बन्धित मां व शिशु उपयोगी विषयों का समावेश प्रशंसनीय है। समसामयिक विषयों पर उपयोगी सामग्री का समावेश इस अंक के महत्व को दुगुना कर देता हैं। इस बेजोड़ अंक के लिए साधुवाद।

चन्द्रकान्त यादव वाराणसी।

जीवनीय पत्रिका पढ़ी तो आश्चर्य हुआ कि मैं अभी तक इस पत्रिका से वंचित क्यों था। मैने उसे अपने एक सहकर्मी के हाथ में देखी जो मुझे काफी उपयोगी लगी।

सुनील कुमार, दिल्ली।

इस अंक में

वर्षा में स्वस्थ्य कैसे रहें 4
वर्षा के लिए लाभकारी नियम 6
उपवास (लंघन) 8
वर्षा में लंघन क्यों 9
जोड़ों का दर्द 12
जोड़ दर्द की नई दवा – मोथा घास 15
बच्चों में कृमि रोग 17
पेट में कृमि 18
दमा से बचाव 20

औषध द्रव्य

गोखरू 25
इसबगोल 26
सत्यानासी 27
सुदाब 28
पित्तपापड़ा 31
भृंगराज 32
पुनर्नवा 33

आहार द्रव्य

लाभकारी घी 36
चावल 37

स्थायी स्तंभ

दादी मां के नुस्खे 10
कफज प्रकृति 23
शब्दकोष 39
ज्ञान कोष 41
पत्र पत्रिकाओं से 46
मधु संचय 47

वर्षा ऋतु में कैसे स्वस्थ रहें ?

वैद्य पूर्णचन्द्र जैन, वैद्य प्रमोद मालवीय, लखनऊ

वर्षा ऋतु, दक्षिणायन अथवा विसर्ग काल की प्रथम ऋतु है जो श्रावण एवं भाद्रपद मास अथवा १६ जुलाई से १५ सितम्बर तक रहती है, जिसमें ऋतु अथवा मौसम के प्रभाव के कारण प्राणियों में अल्प बल रहता है और उन्हें कमजोरी महसूस होती है।

वर्षा ऋतु का प्रभाव

वर्षा ऋतु में वायु एवं जल विकृत हो जाता है। प्रारम्भ में वायु नम एवं रूखी रहती है। पृथ्वी द्वारा जलीयांश का शोषण करने से, पृथ्वी से गरम भाप निकलती रहती है जिससे वायु की रूक्षता में वृद्धि होती है। वर्षा अधिक होने से वायु में शीतलता आ जाती है। इसी प्रकार आकाश के मेघों से ढ़के रहने से एवं वर्षा के कारण इस ऋतु में वायु के चल गुण में वृद्धि होती है इससे तूफान आदि आने लगते हैं। वायु कभी शीत, कभी उष्ण, कभी रूक्ष, नम कभी स्निग्ध, रूप से प्रवाहित होती है। इस प्रकार वायु असात्म्य–दुखकर गंध, वाष्प, धूल और धुएं से युक्त होकर प्राणियों के शरीर में वात दोष को प्रकुपित करती है। वर्षा ऋतु में जल भी दूषित हो अम्लतायुक्त हो जाता है। नदियों में बाढ़ आने और भूमि का कटाव होने से नदी, तालाब, तथा कुएं आदि का जल भी अम्लतायुक्त दूषित हो जाता है। पानी का रंग, रूपऔर गंध विकृत हो जाता है जिससे प्राणियों की अग्नि एवं पाचन क्रिया विकृत हो जाती है। यद्यपि वर्षा ऋतु में आकाश मेघ से घिरा होने से सूर्य का प्रताप कम हो जाता है तथापि बीच में वर्षा न होने पर तथा आकाश साफ होने पर सूर्य भी बलवान हो जाता है जिससे तर गरमी के प्रभाव से प्राणियों के बल में कमी हो कर शरीर में पित्त दोष का संचय होने लगता है।

शरीरस्थ दोषों की स्थिति

दोषों की स्थितियों को देखकर आचार्यों ने अधिक वर्षा युक्त प्रदेश में प्रावृट् एवं वर्षा दो ऋतु मानी है मानव शरीर स्वस्थ अथवा निरोग तभी तक रहता है जब तक शरीर में स्थित वात, पित्त एवं श्लेष्मा दोष एवं इनकी क्रियाएं सम (ठीक) रहती हैं। इनके विषम होने अथवा न्यूनाधिक होने पर शरीर रोगाक्रान्त हो सकता है। वर्षा ऋतु में शरीर में वात दोष का प्रकोप और पित्त का संचय होता है इस कारण अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षा ऋतु स्वास्थ्य के लिए अधिक हानिकारक होती है।

विकारों की उत्पत्ति

वर्षा ऋतु में गंदगी, कीचड़ एवं जलभराव की स्थिति रहती है। इससे मच्छर– मक्खी तथा अन्य कीड़े –मकोडों का आधिक्य रहता है। मच्छरों के काटने से मलेरिया, फाइलेरिया बुखार आने की आशंका रहती है। वर्षा ऋतु में वातावरण में कभी गर्मी तो कभी ठंडक रहती है। इससे बुखार सर्दी जुकाम आदि की आशंका रहती है। शरीर में वांयुदोष के विकृत होने से पाचन ठीक नहीं होता, जो अन्न पाचित होने से बच जाता है वह आंतों में सड़ांध पैदा करता है जिससे आंतों में एक प्रकाश का विष बनता है जिसे आमविष कहते हैं। इस आमविष के कारण, दस्त, पेचिश, हैजा, आन्त्रशोथ, अलसक, आदि व्याधियां उत्पन्न होती हैं। आंतों से आमदोष के शोषित होने पर आमवात संधिवात (आर्थइटिस) उच्च रक्तचाप, गाउट आदि व्याधियां होती हैं। वर्षाऋतु में जल विकृत गंध युक्त तथा विभिन्न द्रव्यों की मिलावट से विभिन्न रंग का गंदला हो जाता है। ऐसे जल में स्नान से शरीर पर अम्होरी (छोटी फुंसियां) गर्मीला (बड़ी फुन्सी) दाद, खुजली हो जाती है। घाव हो जाने पर उसमें जीवाणु संक्रमण होने पर घाव जल्दी ठीक नहीं होता।

वर्षा ऋतु में सावधानियां

घर एवं उसके आसपास का स्थान साफ सुथरा रखें, जल का जमाव न होने दें तथा जल का जमाव होने पर उसे साफकर मिट्टी का तेल तथा नीम के पत्तों

को उबालकर उसका पानी चारों ओर छिड़कें। घर में नीम के पत्ते तथा लोबान हींग एवं गूगल मिलाकर जलावें। उसके धुएं एवं गंध से मच्छर एवं मक्खियां नहीं रहेंगी।

जल का प्रयोग

वर्षा में नदी एवं तालाब का पानी तो कदापि नहीं पीना चाहिए। आकाश से गिरने वाले जल को किसी चौड़े बर्तन में एकत्रित कर प्रयोग में लावें। जल में गंदगी दिखने पर एक बाल्टी जल में पांच ग्राम फिटकरी का चूर्ण डाल कर रख दें गंदगी बैठ जाने पर छानकर प्रयोग करें। शहरों में नलों का पानी भी गंदा एवं दूषित रहता है अतः वर्षा ऋतु में पानी को फिल्टर से छानकर अथवा चार तहों वाले मोटे कपड़े से छानकर पीने के काम में लाना चाहिए। वर्षा ऋतु में पानी को उबालकर ठंडा होने पर छानकर लेने से दूषित जल की आपदाओं से बचा जा सकता है।

विहार

वर्षा ऋतु में नंगे पैर नहीं चलना चाहिये। बाहर छाता लेकर निकलें जिससे वर्षा एवं धूप से बचाव रहे। खुले हवादार मकान के ऊपरी भाग में सोना चाहिये। दिन में सोना तथा रात में जागना नहीं चाहिये। रात्रि में ५ से ८ घंटे की निद्रा लेनी चाहिये। ढ़ीले, सफेद अथवा हल्के रंग के सूती कपड़े पहनना चाहिये। गीले सीले कपड़े नहीं पहनना चाहिये । ओढ़ने बिछाने के कपड़े भी सीलन युक्त न हों तथा उन्हें धूप दिखाते रहना चाहिये। हल्का व्यायाम अथवा योगासन करें। प्रातः भ्रमण इस ऋतु में भी लाभदायक है।

आहार

वर्षा ऋतु में अग्नि कमजोर हो जाती है, पाचन मंद हो जाता है। इसलिये भोजन हल्का, सुपाच्य, ताजा, गर्म और अग्नि को बढ़ाने वाला लेना चाहिए। इस ऋतु में अजीर्ण एवं अग्निमांद्य रहता है अतः भोजन के प्रारम्भ में अदरक के टुकड़ों को सेंधा नमक में मिलाकर ५ से १० ग्राम तक प्रतिदिन लेना चाहिये। अदरक के टुकड़ों को नींबूरस में यदि आधा घंटा तर कर लें तो और भी अच्छा है।

कब्ज रहनें पर २-४ हरड़ काला नमक मिलाकर रात्रि में सोते समय दूध के साथ लेने से मलशुद्धि हो जाती है। भूख अधिक लगती है और हल्का अनुभव होने लगता है। पुराना गेहूं, पुराना चावल, साठी चावल, लाल चावल, सरसों राई, परवल, खीरा, खिचड़ी, दही, मट्ठा, मूंग की दाल एवं अरहर की दाल, तोरई, लौकी, भिंडी, टमाटर, इस ऋतु में लाभदायक एवं शीघ्र पचने वाले होते हैं। आम का प्रयोग किया जा सकता है। आम और दूध का सेवन विशेष उत्तम है। यह कब्ज एवं संग्रहणी के रोगियों के लिए उत्तम है। पतले रस वाला देशी आम लें तो अधिक उत्तम है। पत्तियों वाले हरे शाक वर्षा ऋतु में न सेवन करें तो अच्छा है। वायुशामक सूखे गर्म, घी तेल के नमकीन इस ऋतु में हित कारक होते हैं। कैथा, अनार, पोई, प्याज की चटनी पोदीना के साथ लाभकारी है। फलों में सेब, केला, अनार, नासपाती, का सेवन किया जा सकता है। भोजन भूख लगने पर ही करना चाहिये1 भोजन निर्धारित समय पर करें तथा रात्रि भोजन जल्दी करें।

अपथ्य या परहेज

वर्षा ऋतु में ठंडे रूखे पदार्थो का सेवन, चना, मोठ, उड़द, जौ, मटर, मसूर, ज्वार, मक्का सेवन, अनेकबार भोजन करना, भूख न लगने पर भी आहार लेना , आलू, कसेरू, कटहल, सिंघाड़ा, करेला आदि का सेवन हानिकारक होता है। रात्रि में ९ बजे के बाद में भोजन नहीं करना चाहिये। रात्रि में दही या मट्ठेका सेवन न करें, बाजारू चाट, मिठाई का भी सेवन न करें। तथा स्त्री प्रसंग भी संयमित रखें।

रजिस्ट्रेशन संबंधी आवश्यकताओं के कारण पिछले सभी अंकों को हमें शून्य अंक मानना पड़ा है। इसी कारण प्रस्तुत अंक को वर्ष १ का अंक १ माना गया है। आशा है पाठक हमारी मजबूरी समझेगें व अपना सहयोग देते रहेगें।

य द्यपि पत्रिका में छपे लेंखो के संपादन का हम पूरा प्रयास करते हैं परन्तु लेख में दिये गये तथ्यों की जिम्मेदारी संपादक की नहीं है।

वर्षा में लाभकारी नियम

वैद्य र.म. नानल, बंबई

इस ऋतु में सृष्टि और शरीर दोनों में अम्लता बढ़ी हुई रहती है। भूख की कमी रहती है। शरीर में गीलापन भी रहता है। अतः निम्न नियमों का पालन करना चाहिए:-

–जिस दिन आकाश में बादल छाये रहने के कारण सूर्य की स्वच्छ धूप नज़र न आये, उस दिन उपवास करना श्रेष्ठ है। उपवास करना संभव न हो तो हल्का और गरम भोजन करें।

– पीने के लिए पानी का "काढ़ा" बनाकर रखें। यानी 4 लीटर पानी को उबालकर एक लीटर करें। और उसे ठंडा कर पियें। इस ऋतु में बिना उबाला हुआ सादा पानी न पियें।

– शाकाहारी व्यक्ति अपनी पाचन शक्ति के अनुसार सब्जियां पकाकर उसमें धनियां, जीरा, कालीमिर्च, अदरक और हींग डालकर खाएं।

– इस ऋतु में मांसाहार यथासंभव न करें। इसका कारण यह है कि इस ऋतु में खाद्य पशुओं के आहार और जल के दूषित रहने की संभावना अधिक रहती है, अतः उनके मांस के दूषित रहने की संभावना भी काफी रहती है। ऐसे दूषित मांस के सेवन से स्वस्थ व्यक्ति भी नाना प्रकार की व्याधियों का शिकार हो सकता है।

– बाजार की चीजें न खायें। इस ऋतु में संक्रामक रोगों के फैलने की आशंका अधिक रहती है।

– भोजन से पूर्व एक गिलास दही के तोड़ में अदरक, कालीमिर्च और सेंधा नमक डालकर लें।

– नित्य एक बड़ा चम्मच शहद पानी के "काढ़े" के साथ लें।

– भोजन के साथ पापड़ भूनकर लें। उड़द की दाल की बनी बडी, मूंग की दाल की मुंगौड़ी अथवा अन्य तले हुए पदार्थ न खाएं।

– इस ऋतु में चौलाई का सेवन श्रेष्ठ है। पत्तियों वाली सब्जी होने के कारण पचने में यह हल्की होती है। इस सब्जी में क्षार की मात्रा अधिक होने के कारण यह वर्षा ऋतु में सेवनीय बन जाती है। क्योंकि वर्षा ऋतु में अम्लता अधिक होती है जिसे चौलाई का क्षार संतुलित कर देता है। क्षार और अम्ल पदार्थों के मिलने से मधुर रस बनता है जो वर्षा ऋतु में नैसर्गिक वातवृद्धि पर अंकुश का काम करता है।

बरसात के मौसम में भोजन में बैंगन की भरवां सब्जी भी हितकर है। इसी प्रकार परवल की भी भरवां सब्जी भी सेवनीय है। इस ऋतु में मुरब्बा, मीठा आचार और नींबू के अचार का सेवन कम करना चाहिए।

इस ऋतु में पाचनशक्ति कमजोर होती है अतः बार–बार खाना, हलवा, पूडी, मिठाई आदि भारी चीजें खाना हितकर नहीं। दो वक्त खाना खायें। इनके बीच में जहां तक संभव हो, न खायें। इससे भूख खुलकर लगती है व खाया हुआ अन्न पच जाता है। बीच में भूख लग जाये तो गरम पानी में नींबू का शर्बत बनाकर पियें। टमाटर का सूप और सिंके हुए डबलरोटी के स्लाइस लें। चावल के मांड में मटठा, अदरक, धनियां और जीरे की बघार देकर पियें।

पागल नहीं हूं जो तुम्हारा "भेजा" खाऊं मालूम नहीं है बरसात में "मांस" खाना वर्जित है।

लोक स्वास्थ्य परंपराएं

चैते चना बैसाखे बेल
जेठे शयन असाढ़े खेल
सावन हरें भादों तित्त
क्वार मास गुड़ खाओ नित्त
कातिक मूली अगहन तेल
पूसे करो दूध से मेल
माघ मास घिउ खिचड़ी खाय
फागुन में नित प्रात नहाय
जो यह नियम बारह धरै
रोग दोस सब तन के हरै।।

वर्षा ऋतु-रसविचार

डा. बी.वी. साठ्ये, नागपुर

अर्वाचीन विज्ञान के अनुसार जब गर्जन-तर्जन के साथ आंधी आती है, तब वायुमंडल में मौजूद आक्सीजन और नाइट्रोजन गैसों का संयोग होकर नाइट्रिक आक्साइड गैस का निर्माण होता है। यह गैस पुनः आक्सीजन से संयोग करती हैं, जिससे नाइट्रोजन आक्साइड गैस बनती है। यह गैस पानी में घुलनशील है। जब पानी बरसता है, तो यह गैस पानी में घुल जाती है, जिससे नाइट्रिक ऐसिड, यानी शोरे का अम्ल बनता है। यह अम्ल पृथ्वी पर गिरकर उसके घटकों से संयोग करके नाइट्रेट लवण बनाता है, जिसका उपयोग पौधे पुष्टाहार के रुप में करते हैं। इस पृष्ठभूमि में आयुर्वेद के प्राचीन शास्त्रकारों का प्रकृति निरीक्षण द्वारा यह निष्कर्ष निकालना कि वर्षा ऋतु का रस अम्ल है, सचमुच आश्चर्यजनक है।

आयुर्वेद के प्राचीन शास्त्रकारों ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। सूर्य के पृथ्वी के निकट आने, पृथ्वी से दूर चले जाने तथा पूरब में उगते हुए थोड़ा उत्तर या दक्षिण की ओर हटने का प्रभाव समस्त चराचर जगत पर पड़ता है, यह उनके निरीक्षण का निष्कर्ष रहा।अन्य पांच ऋतुओं की तुलना में बरसात की ऋतु में जल वर्षा ऋतु महाभूत अधिक प्रकट होता है। जल की नमी तथा वातावरण की गरमी के कारण वर्षा ऋतु में जल तथा तेज महाभूत अधिक प्रकट होते हैं। जमीन पर चारों ओर छायी वनस्पतियों के रूप में पृथ्वी तत्व का प्रकटन स्पष्ट होता है।

आयुर्वेद के मनीषियों ने देखा कि इस ऋतु में वे बीज भी अंकुरित हो रहे हैं, जो महीनों से पृथ्वी में दबे पड़े थे। खेतों में बोये जाने वाले बीजों का अंकुरित होना तो सबके लिये प्रत्यक्ष है। लेकिन मनुष्य की मेहनत के बिना प्राकृतिक रूप से बिखरे-बोये बहुत से बीजों में बरसात में नये अंकुर फूटते हैं। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि बरसात का मौसम जल तथा अग्नि महाभूतों को अधिक प्रकट करता है। तभी उस समय बोये तथा अनबोये किंतु पृथ्वी के गर्भ में उपस्थित बीज अंकुरित हो उठते हैं।

आयुर्वेद ने महाभूत की अधिकता के आधार पर पदार्थों का स्वरूप निश्चित किया और वर्षा ऋतु का रस अम्ल बताया जिसके मुख्य घटक जल और अग्नि हैं।अंकुरित होते बीजों के परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंकुरण के पूर्व तथा अंकुरण के समय उनमें खट्टे रस (ऐसिड) का आधिक्य रहता है। गेहूं, चना, मूंग आदि के उदाहरण से स्पष्ट है कि बीज के अंकुरण के समय अम्ल रस की प्रधानता होती है। इसके अतिरिक्त इस मौसम में सामान्य रूप से व्यवस्थित रखा हुआ दूध भी अन्य ऋतुओं की अपेक्षा जल्दी खट्टा हो जाता है। इस मौसम में अनेक खाद्य पदार्थ भी अन्य ऋतुओं की अपेक्षा जल्दी खट्टे हो जाते हैं। देखा गया है कि तांबे के साफ बर्तन में मामूली खट्टे पदार्थ के सम्पर्क से भी दाग पड़ जाते हैं। बरसात के मौसम में तांबे और चांदी के बर्तनों पर मात्र हवा के प्रभाव से ही दाग पड़ जाते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि हवा में नमी और उसमें अम्लता है।

प्रकृति में सर्वत्र अम्लाधिक्य के लक्षणों को देखकर आयुर्वेद के शास्त्रकारों ने वर्षा ऋतु को अम्ल रसवाला कहा है। अम्ल रस के निर्माण में पांच महाभूतों में से जल और अग्नि का योग अधिक मात्रा में होता है। ये दोनों ही मृदुता (नरमी) उत्पन्न करने वाले तत्व हैं। खट्टे रसवाली वनस्पतियां पूर्णरूप से नहीरू सूखतीं। दवाओं में यदि खट्टा रस पड़ा हो तो उनकी गोली कड़ी नहीं बन पातीं।

इसी कारण आयुर्वेद में खट्टे रस को चाट कर खाने का रस बताया गया है। अग्नि और जल की अधिकता से निर्मित होने के कारण खट्टी चीजें नरम और रसीली बनी रहती हैं।

बरसाती मौसम की समस्याएं और दादी मां के घरेलू नुस्खे

श्रीमती राज रानी शर्मा, आगरा

भूख न लगती हो, पतले दस्त आते हों तो जीरा, सौफ, धानेया, दालचानी, सौंठ को पानी में उबाल करके पानी को पिलाएं (२-३ बार)।

– गैस की समस्या हो तो सौंफ का चूर्ण (१-२ चम्मच) गर्म पानी के साथ लें।

– पलाश के तुरन्त पीसे गये बीज पेट के कीड़ों (एसकेरिस) के विरुद्ध अच्छा परिणाम देते हैं (१-२ चम्मच)।

– पलाश के बीजों के चूर्ण और नींबू के रस को मिलाकर बनाए हुए मल्हम "धोबी इच" और अन्य त्वचा की बीमारियों में बहुत कारगर होता है।

– ताजी भुनी प्याज की गाँठ को कुचलकर फोड़े पर बांधें, फोडा पक कर फूट जायेगा। और मवाद निकल जायेगा अब साफ, उबालकर व ठंडा (गुनगुने) किये गये पानी से धोकर जामुन की गुठलियों का पाउडर फूटे फोडे पर लगाकर पट्टी से बांध लें, घाव शीघ्र ही भर जायेगा ।

– दाद होने पर सेम की बेल के कोमल पत्तों को दाद के स्थान पर मसल कर रगड़ें। इससे जलन तो मचेगी पर दाद ठीक हो जायेगा (५-१० दिन तक एक से दो बार तक दोहराऐं)।

– घुइंया के पत्तों के डंठलों को नमक के साथ पीसकर गाँठ पर बांधे। या तो गांठ बैठ जायेगी या पककर फूट जायेगी।

– जामुन की गुठली का चूर्ण चोट के स्थान पर रखकर पट्टी बांधने से खून रुक जाता है और घाव भी भर जाता है।– घुइयां के पत्तों का रस चोट पर लगाने से बहता खून शी घ ही रुक जाता है। और घाव भी जल्दी भर जाता है।

लंघन

प्रो. शिवकुमार मिश्र, लखनऊ

जैसे ही लंघन शब्द का उच्चारण किया जाता है यह अंदाज होता है कि "उपवास" या खाना न खाने की बात कही जा रही है। यह एक आम बात बन गई है। किन्तु जब लंघन आयुर्वेदीय परिभाषा की ओर ध्यान जाता है तो उपवास, लंघन का एक अंग मात्र है। लंघन, केवल उपवास ही नहीं है बरन चरक के अनुसार शरीर एवं मन में लघुता उत्पन्न करने वाली सभी प्रकार की क्रियाएं "लंघन" कहलाती हैं। अतः शरीर और मन में हल्कापन लाने के लिये जो कुछ किया जाय, वही "लंघन" है। शरीर में दोष (वात,पित्त,कफ), धातु और मल (पुरीष, स्वेद, मूत्र), जब बढ़ जाते हैं तो इस स्थिति में उनको कम करके समभाव में लाना ही शरीर एवं मन में हल्कापन से समझना चाहिए है।

आयुर्वेद लंघन के **दस प्रकार** मानता हैं :-

वमन (कै कराना)
विरेचन (मल निष्कासन)
निरूहण (बस्ति क्रिया)
वायु का सेवन
धूप का सेवन
पाचन
उपवास (अनशन)
व्यायाम
पिपासा (प्यास रोकना) और
शिरो विरेचन (शिर में स्थित दोषों को बाहर निकालना)

उपर्युक्त उपायों के द्वारा शरीर एवं मन में शुद्धि व हल्कापन लाने का प्रयास किया जाता है ताकि रोगों की उत्पत्ति न हो सके। सामान्यतया उपर्युक्त क्रियाओं में से कुछ ही प्रयोग में लायी जा सकतीं हैं। जैसे,

धूप का सेवन
उपवास और
शिरो-विरेचन (इसमें नाक के द्वारा जल व औषधियों का प्रयोग किया जाता है)।

लंघन के लिये योग्य समय

वात रोगियों, प्रमेह तथा स्थूल शरीर वाले रोगियों के लिए शीतकाल में ही लंघन लाभकर होता है। साधारणतया यह समझना चाहिए कि जब वैद्य योजनापूर्वक लंघन कराता है तब के लिए उपर्युक्त काल उचित है। सामान्यजन अपने नित्य प्रति के व्यवहार में यह समझें कि " कम खाना और गम खाना " यानी कम खाना और धीरज रखना सर्वदा स्वास्थ्यकर होता है।

लंघन से होने वाले लाभ :

वात, मूत्र, पुरीष का साफ होना

आम पाचन, शरीर के अंगों में हल्कापन,कफ तथा कंठ आदि की शुद्धि, जंभाई व थकान का न रहना,पसीना आने से त्वक् शुद्धि,भोजन में रुचि उत्पन्न होना,रोग की तीव्रता कम होना, प्रसन्नता व उत्साह, अंतरात्मा में आनंद का अनुभव होना और इंद्रियों की विमलता ये सभी उपलब्धियां आमपाचन एवं अग्नि संदीपन के कारण होती है।

अति लंघन के लक्षण : लंघन शरीर व रोग दोनों की शक्ति का अनुमान लगाकर ही करना चाहिये। क्योंकि यदि कमजोर शरीर का व्यक्ति, अपनी शक्ति से ज्यादा लंघन करता है तो इससे नुकसान हो सकता है। अति लंघन करने से रोग घटने के बजाय बढ़ जाता है। अतः **निम्न लक्षणों के प्रकट होते ही लंघन बंद कर देना चाहिए :-**

मलक्षय,
बहुत दुबलापन,
सभी धातुओं एवं मलों में रूक्षता, मुख का सूखना व बहुत प्यास लगना,
नींद न आना, आंख से ठीक न दिखना, कान से ठीक न सुनना तथा अन्य इंद्रियों की कार्यहानि,कमजोरी महसूस करना, तथा वातविकार आदि।

शेष पृष्ठ 19 पर--

वर्षा ऋतु में लंघन, क्यों और कैसे ?

वैद्य रमेश नानल, बंबई

वर्षा ऋतु में आदान काल समाप्त होकर विसर्ग काल प्रारम्भ होता है। सूर्य की गर्मी से बढ़ी हुई उष्णता, रूक्षता, शुष्कता आदि की तीव्रता धीरे-धीरे कम होने लगती है और धीरे-धीरे क्रमशः पृथ्वी पर शीतलता, स्निग्धता और नमी बढ़ने लगती है। वायुमंडल में स्थित जल के घनीभूत होने से वर्षा प्रारंभ होती है। पेड़-पौधे तथा प्राणी पुष्ट होने लगते हैं।

वातावरण की नमी से, ठंडी हवा के कारण, बादलों के घिरे रहने से, पृथ्वी की भाप के कारण, सभी द्रव्यों में अम्लता बढ़ने सेपानी के गंदा होने से एवं काल स्वभाव के कारण शरीर में दोष कुपित होते हैं, विशेष रूप से वात प्रकोप होता है। शीतलता, अम्लता एवं नमी के कारण कफ बढ़ता है। पाचन शक्ति कम हो जाती है। शरीर का बल घट जाता है। गर्मी के कारण शरीर की धातुएं दुर्बल रहती ही हैं। कुल मिलाकर शरीर का बल कम ही रहता है। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद लंघन करने का परामर्श देता है।

लंघन क्या है ?

"यत्किञ्चिल्लाघवकरं देहे तल्लंघनं स्मृतम्"

अर्थात् शरीर में हल्कापन उत्पन्न करने वाले सारे पदार्थों को लंघन कहते हैं, जो द्रव्य रूप में भी हो सकते हैं और क्रिया के रूप में भी हो सकते हैं। परन्तु वर्षा ऋतु में लंघन का अर्थ प्रायः हल्का भोजन अथवा उपवास है।

हल्का भोजन

भोजन की मात्रा पाचन शक्ति की स्थिति से निश्चित होती है। वर्षा ऋतु में पाचन क्षमता स्वाभाविक रूप से मंद होती है, अतः भोजन की मात्रा वर्षा ऋतु में कम होनी चाहिए। यह एक सामान्य नियम है।

जो अन्न स्वभाव से पचने में हल्का है अथवा जिस अन्न को संस्कार द्वारा हल्का बनाया गया है ऐसे अन्न का सेवन करना चाहिए। पुराना जौ, गेहूं और चावल स्वभाव से हल्के अन्न हैं। ये धान्य एक वर्ष तक संभालकर रखने से हलके हो जाते हैं। इसी प्रकार पुराना शहद, मूंग, मसूर की दाल का पानी, सूप आदि पदार्थ स्वभाव से लघु हैं।

जांगल देश के पशुओं का मांसरस, सोंचर नमक, अदरक और कालीमिर्च के चूर्ण के साथ दही का तोड़, विविध दालों का पानी, द्राक्षासव मिलाया हुआ पानी, उबालकर काढ़ा बनाया हुआ पानी, भुने हुए धान्य जैसे खील, लइया और भुने चने इत्यादि पदार्थ संस्कार से लघु हैं। वर्षा ऋतु में सामान्यतया उपर्युक्त आहार लेना चाहिए। यह भी एक प्रकार का लंघन है।

लंघन का अर्थ उपवास कब समझें ?

जिस दिन इस प्रकार घने बादल छाये हों कि सूर्य का दर्शन ही न हो, धुआ धार वर्षा हो रही हो तब लंघन का अर्थ "उपवास" या "अनशन" करना उचित है। ऐसी स्थिति में प्रबल अग्नि एवं उत्तम भूख वाले व्यक्तियों को भी कम खाना चाहिए न कि भरपेट। ऐसी स्थिति में भोजन में अम्ल रस के द्रव्य, स्निग्ध द्रव्य और सेंधा नमक का प्रयोग अवश्य करें। जैसे ताजा टमाटर का सूप बना उसमें घी अथवा मक्खन एवं सेंधा नमक मिलाकर पियें। ताजे भात को घी और सेंधा नमक के साथ खायें। शहद का सेवन करें।

वर्षा ऋतु में होने वाले रोग लंघन करने वालों को नहीं होते और जिन्हें कोई विकार होता है, उनका विकार लंघन से शीघ्र ठीक हो जाता है।

दादी मां के नुस्खे

वैद्य बदलूराम रसिक, लखनऊ

सरस्वती– दादी मां, चरण स्पर्श।

दादी मां– सुखी रहो बेटी, हमने जो कुछ तुम्हें लिखाया वह याद है ?

सरस्वती – हां दादी मां, याद है, और अगर आप हमें, मां तथा बच्चे की बीमारीके सम्बन्ध में उचित जानकारी दें दें तो बड़ी कृपा होगी।

दादी मां – तो खोली कापी, और पहले बच्चे वाली माता के सम्बन्ध में लिखो। बच्चा होने के बाद जच्चा को कभी–कभी बुखार आ जाता है और धीरे–धीरे महीनों मंद ज्वर बना रहता है। जच्चा समझती है कि कमजोरी है या उसके बताने पर घर वाले ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं, मगर यह ज्वर बड़ा हानिकारक होता है। बहुत दिन रहने पर शरीर में पीड़ा, भूख की कमी, रक्त की कमी होती है और जिगर बढ़ जाता है। शरीर पीला पड़ने लगता है, दूध सूखने लगता है और बच्चे को भी हल्का ज्वर रहने लगता है। इन लक्षणों के होने पर गुरुच चार अंगुल तुलसी की पत्ती २०, पीपल बड़ी एक तीनों को कुचलकर आधा लीटर पानी में मिट्टी या स्टील के बर्तन में चूल्हे या स्टोव पर चढ़ा दें, ३० मिनट पकने और चौथाई रहने पर उतारकर छान लें। इसमें १ चम्मच शहद डालकर सवेरे निहार मुंह पी जायं, खाने के बाद दोनों समय दशमूलारिष्ट ४–४ चम्मच दुगुने पानी के साथ एक मास तक पीने से प्रसूता ज्वर दूर हो जाता है और शरीर में शक्ति आ जाती है। अगर पेट में दर्द रहता हो या भोजन पचने में कठिनाई हो तो नित निहार मुंह एक चम्मच अजवाइन चबाकर खाने के बाद थोड़ा पानी पीने से भूख लगेगी और पेट का दर्द दूर हो जायेगा। यह तो रही जच्चा की बात, लिख लिया बेटी ?

सरस्वती – हां दादी लिख लिया, अब बच्चे के रोगों के बारे में बतायें।

दादी मां – लिखो बेटी, बच्चे के शरीर में नित सवेरे सरसों के तेल की मालिश करनी चाहिये और बाद में गेहूं के आटे की लोई बनाकर बच्चे के शरीर पर फेर देना चाहिये। फिर जाड़े के मौसम में गुनगुने पानी से तथा गर्मी में ताजे पानी से स्नान कराकर आंखों में काजल लगाकर बच्चे को दूध पिलाकर साफ बिस्तर पर लिटा देना चाहिये। हर समय बच्चे को गोद में नहीं लिये रहना चाहिये। हर समय गोद में लिये रहने से बच्चे की शारीरिक बाढ़ रुक जाती है। बच्चा बिस्तर पर जितना अधिक खेलेगा, हाथ पांव फेंकेगा उतना ही स्वस्थ होगा।

सरस्वती – दादी मां, आजकल तो स्त्रियां बच्चों को काजल नहीं लगती हैं। डाक्टर कहते हैं काजल नहीं लगाना चाहिये काजल लगाने से आंखें खराब हो जाती हैं।

दादी मां – अच्छा प्रश्न किया बेटी, देखो, हमारी उम्र की हजारों लाखों औरतें शहर और गांव में रहती हैं। ८० वर्ष की उम्र तक वे बराबर काम करती हैं। उनकी आंख की ज्योति बराबर रहती है। हां, कुछ औरतों को बीमार रहने या सर में हमेशा दर्द रहने के कारण आंख की ज्योति खराब हो जाती है या उन्हें मोतियाबिन्द हो जाता है। अब हमें देखो हम ७५ वर्ष की हैं मगर हमारी आंखें आज भी ठीक हैं। हम समाचार पत्र बिना अटके पढ़ती हैं। सारे काम करती हैं। इसका मुख्य कारण है कि हम और हमारी तरह की अनेक औरतों ने २०–२५ साल की उम्र तक नित आंखों में काजल लगाया हैं। सर और कान में बराबर तेल डाला है। उसके प्रभाव से आज तक आंखों की ठीक है। समझीं; इसलिये बच्चों को काजल लगाना जरूरी है। और आजकल की पढ़ी– लिखी औरतें न तो काजल बनाना जानती हैं और न बच्चों को लगाना जानती है। इसीलिये तो अब १०० में से २०–२५ बच्चे आंख की रोशनी में कमी के कारण ऐनक लगाने के लिए मजबूर हैं।

सरस्वती– दादी मां, हमने ५–६ साल पहले दिल्ली की महिला डाक्टर

द्वारा लिखा एक लेख पढ़ा था। उसमें उन्होंने कहा था कि चूल्हे से रोटी कभी नहीं बनानी चाहिये। इससे आंखें खराब होती हैं और भी कई बीमारियां पैदा होती हैं। इसके बारे में आपकी क्या राय है। ?

दादी मां– वाह बेटी वाह, बड़ा अच्छा सवाल किया है। अपने देश की ७५ से ८० प्रतिशत आबादी गांवों में है और वहां की औरतें युगों से चूल्हे में ही खाना बनाती रही हैं और आज भी बना रही हैं। मगर उनमें से २–४ को छोड़कर जिनकी आंख में कोई रोग है शेष ८० साल की उम्र तक ऐनक तक नहीं लगाती हैं यह कथन डाक्टर की बात को झूठा साबित कर देता है। गैस २० साल से चली है और स्टोव ५० साल से चला है। इन दोनों का चलन शहरों में अधिक है देहात में नही। मगर शहर की औरतें और लड़कियां छोटी उम्र से ऐनक लगाने लगी हैं इसका क्या कारण हो सकता है ? स्टोव तथा गैस का चूल्हा ? देहात में आज भी औरतें लकड़ी या कंडे से ही रोटी पकाती हैं।अतः यह आज के पढ़े–लिखे लोगों के भ्रम के अलावा कुछ नहीं है। काजल लगाना आंख के लिए अति उत्तम है।

सरस्वती – दादी मां, काजल कैसे बनता है उसकी विधि बताइये।

दादी मां – सुनो, एक मिट्टी का बड़ा दिया लें, सफेद रुई लें, सरसों का तेल जितना चिराग में आ जाय ले लें, अब रुई की मोटी सी बत्ती बना लें और दिये (चिराग या सकोरे) के तेल में डाल दें और बत्ती का अगला हिस्सा थोड़ा बाहर निकाल कर उसको माचिस से जला दें। जब दिया जलने लगे तो उसके ऊपर एक भगोना उल्टा रख दें और भगोने के निचले हिस्से में तीन स्थान पर छोटे–छोटे ईंट के टुकड़े रख दें जिससे अन्दर बाहर हवा जाती रहे ऐसा न करने से दिया बुझ जायगा। अन्दर जल रहे दिये से जो धुआं उठेगा वह भगोने के भीतरी भाग के पेंदे में लग जायेगा। जब सब तेल जल जाय और दिया बुझ जाय तो भगोने को अलग करके उलट कर देखें। उसमें पेंदे में काजल लगा मिलेगा। इस काजल को चम्मच से खुरचकर निकालकर एक कटोरी में रखें। इस सूखे काजल में ताजा गाय या भैंस का घी इतना मिलायें कि उसमें काजल सन जाय यानी मिल जाय। बस, काजल तैयार है इसे किसी प्लास्टिक या उत्तम लोहे की डिब्बी या कजरौटा में रख दें और रोज रात को सोते समय लगा लें। यह काजल छः महीने चलेगा।

सरस्वती – दादी मां, आपने तो काजल बनाने की बड़ी सरल और सस्ती विधि बता दी।

दादी मां – बेटी, काजल बनाने की दूसरी विधि हम आपको बताती हैं जिसके लगाने से आंख में कोई बीमारी एक नहीं होती है। एक बड़ा दिया, नीम का तेल, ३ ग्राम कपूर तथा रुई लें। रुई को चौड़ी फैलाकर उसमें कपूर (पीसा हुआ) छिड़क कर गोल करके रुई की मोटी बत्ती बना लें और पहली विधि से, काजल बना लें। यह काजल बड़ा लाभकारी है। मैं रोज रात में यही काजल लगाकर सोती हूं।

सरस्वती – दादी मां, मैने काजल बनाने की दोनों विधियां लिख लीं हैं मगर एक बात और बताओ कि बच्चों के और कौन रोग होते हैं और उनका उपचार क्या है ?

दादी मां – लिखो बेटी – बहुत–सी स्त्रियां जिनकी गोद में छोटे बच्चे होते हैं और जो गर्मी या बरसात साल में दही, पालक का साग, उरद की दाल, घुइयां, कटहल आदि खा लेती है और बच्चों को दूध पिलाती हैं। इससे बच्चों के दस्त आने लगते हैं। ऐसी हालत में मां को एक चम्मच अजवाइन सवेरे फांक लेना चाहिये और बच्चों को गरमी में दस्त या हल्का बुखार रहने पर बाजार से अतीस लाकर उसे धोकर पत्थर पर पानी से रगड़ लें और रगड़े हुए अंश को एक चम्मच में उठा लें और बच्चे को पिला दें। दिन में तीन बार पिलाने से दस्त बंद हो जाते हैं और खांसी बुखार भी चला जाता है। इसी प्रकार जाड़े के मौसम में अगर दस्त या बुखार खांसी हो तो बाजार से एक जायफल खरीद लें। और उसे पत्थर पर पानी से घिसकर बच्चे को चटायें तो दस्त बन्द हो जायेंगे और पसली चल रही हो, बच्चा कांख रहा हो तो बारहसिंगे का सींग पत्थर पर रगड़कर रगड़े हुए अंश को एक कटोरी में उठा लें और आगपर हल्का गरम करके बच्चे की पसली पर लेप कर दें ३–४ बार लगाने से पसली का चलना बंद हो जायेगा। अगर दांत निकल रहे हैं और दस्त आ रहे हैं तथा बुखार भी है तो चतुर्भुजी का चूर्ण एक माशा मां के दूध या शहद में मिलाकर खिलाने से बच्चा ठीक हो जायेगा। चतुर्भुजी में अतीस, बारहसिंगी नागरमोथा और छोटी पीपल ये चार वस्तुएं होती हैं। इनको पीस कर महीन चूर्ण बनाकर रख लेना चाहिए। बच्चों के जुकाम खांसी, बुखार तथा दस्त आने पर इस चूर्ण को देना चाहिए। यह चूर्ण ५–७ मास तक बच्चों को देना चाहिये। अब सूखा रोग की भी दवाई लिखो।

सरस्वती – हां बताओ ।

शेष पृष्ठ 30 पर– –

जोड़ों का दर्द

जोड़ों का दर्द एक लक्षण है जो कई रोगों में देखने को मिलता है। साधारणतः लोग इसे ही भ्रमवश बीमारी मान लेते हैं, निम्न रोगों में जोड़ों का दर्द एक लक्षण के रूप में देखने को मिलता है

– आमवात
– संधिवात
– वातरक्त (गाउट)
– चोट

उपरोक्त रोगों में से जोड़ का दर्द किस रोग के कारण है इसकी पहचान के लिए उस रोग के अन्य लक्षणों को ध्यान में रखकर जांच करते हैं। इन लक्षणों की तालिका भी इस सन्दर्भ के लिए दी है या फिर खून की जांच करा लेने से भी उस रोग का पता लगाकर उस रोग की चिकित्सा करते हैं। नीचे हम उन प्रमुख रोगों के कारण, लक्षण व चिकित्सा का वर्णन कर रहे हैं:

आमवात

इस रोग का प्रमुख कारण पेट का खराब होना है। ज्यादा चटपटे, मिर्च–मसाले व चिकनाई युक्त भोजन के अभ्यास से परस्पर विपरीत गुण वाले आहार द्रव्यों को लेते रहने, दिन में सोने व रात में जागने, अपच बने रहने पर भी आहार लेने से आमवात होता है इसमें पाचक रस कम मात्रा में निकलते हैं जिससे खाये हुए आहार का अच्छी तरह से पाचन नहीं हो पाता जिसके कारण अधपके "रस" धातु (आम) का निर्माण होने लगता है। यह अपक्व "रस" "आम" शरीर के लिये हानिकर होता है क्योंकि यह साथ मिलकर रक्तवाहिकाओं द्वारा पूरे शरीर में दौड़ता है। और जोड़ों में धीरे–धीरे एकत्र होकर उनमें विकृति पैदा कर देता है।

लक्षणः आमवात में प्रमुख रूप से निम्न लक्षण देखने को मिलते हैं : जोड़ों में दर्द, सूजन, व जकड़ाहट होती है। यह तकलीफ अधिकतर छोटे जोड़ों से शुरू होकर बड़े जोड़ों में देखने को मिलती है इसके अलावा बुखार, किसी काम में मन न लगना, भूख न लगना, प्यास लगना, सुस्ती महसूस करना, खाये हुए आहार का न पचना, कब्ज आदि लक्षण भी रहते हैं। रोगी चल फिर नहीं पाता, मन दुखी रहता है, पेट भरा हुआ सा मालूम पड़ता है तथा कब्ज की शिकायत भी रहती है। यदि आमवात से रोगी अधिक दिनों तक पीड़ित रहता है तो हृदय के कपाटों में भी विकृति पैदा हो सकती है जिससे हृदय को ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। इससे कारण रोगी को सांस फूलने व हृदय प्रदेश में दर्द की शिकायत भी हो सकती है।

आमवात किसी भी उम्र में पैदा हो सकता है परंतु अधिकतर बच्चों व युवकों में देखने को मिलता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में यह अधिक देखने को मिलता है।

आमवात के रोगी में कभी –कभी सिर्फ जोड़ में दर्द, बुखार, शरीर में भारीपन या कब्ज आदि की शिकायत ही देखने को मिलती है पर कभी–कभी रोगी में सारे लक्षण एक साथ देखने को मिलते हैं। आमवात का रोगी दिन में अधिक सोता है इसका कारण यह है कि रात में "वात दोष" बढ़ जाता है। जिस कारण उसको दर्द व बैचेनी ज्यादा महसूस होती है अतः इस परेशानी से नींद नहीं आती व रात में जागना पड़ता है।

यह रोग एक बार ठीक हो जाने पर पुनः कभी भी हो सकता है। इस तरह यदि बार–बार रोगी को प्रभावित करता है तो जोड़ों में कुरूपता आ सकती है।

वात रक्त, गाउट

इस रोग का भी कारण अनाप–शनाप भोज्य पदार्थों का लेना है अर्थात निरन्तर कई दिनों तक मांस–मछली, अंडे आदि मांसाहार का प्रयोग, मूली, आलू, घुइंया (अरवी), दही, सिरका, उड़द चटपटे व

नमकीन पदार्थों तथा शराब का अतिसेवन आदि।

इन कारणों से शरीर में मांस तत्व (प्रोटीन) की अधिकता हो जाती है जिसके उपद्रव स्वरूप रक्त में यूरिक एसिड की मात्रा अधिक हो जाती है जो जोड़ में धीरे–धीरे जमा होकर उसमें दर्द पैदा कर देती है।

इस रोग की शुरूआत पैर के अंगूठे से प्रारम्भ होती है। रोगी रात्रि को सामान्य स्थिति में सोता है लेकिन अर्धरात्रि में उसको पैर के अंगूठे में अचानक तेज दर्द, जलन और सूई चुभने की अनुभूति होती है। अंगूठा सूज भी जाता है। किसी–किसी रोगी में यह लक्षण अंगूठे से शुरू न होकर पैर में एड़ी के पास वाले जोड़ या हाथ में हथेली के पास वाले जोड़ से होती है। और धीरे–धीरे अन्य जोड़ों में फैल जाती है। गाउट के रोगी में जोड़ का दर्द किसी एक पैर या हाथ में होगा, दोनों अंगों में साथ–साथ नहीं।

संधिवात

यह रोग अधिकतर वृद्धावस्था में देखने को मिलता है। यह सिर्फ घुटनों को ही प्रभावित करता है। दर्द के कारण रोगी को घूमने फिरने में परेशानी होती है। कभी–कभी जोड़ों से हल्की "कट" की आवाज सुनाई पड़ती है। इसमें जोड़ों की रचनाओं का लचीलापन खत्म हो जाता है। वे सूखने सी लगती है। जिसके कारण बैठने–उठने व घूमने फिरने में परेशानी होती है। कभी–कभी यह रोग कमर के जोड़ या कंधों को भी प्रभावित करता है।

उपरोक्त रोगों के अलावा मधुमेह, यौन रोगों, राज्यक्ष्मा (टी.बी.), पुराना आंव आदि रोगों के अधिक दिनों तक शरीर में बने रहने पर उपद्रव स्वरूप "जोड़ों का दर्द" होता है। इन रोगों की पहचान के लिये योग्य वैद्य या चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

आमवात, संधिवात व गाउट की अंतर–सूचक लक्षण तालिका

आमवात

- बाल्यावस्था में प्रारम्भ होता है।
- प्रायः यह बड़े जोड़ों में देखने को मिलता है।
- यह दोनों तरफ साथ–साथ हो सकता है।
- अधिकतर बुखार देखने को मिलता है।
- जोड़ों में सूजन, लालिमा, दर्द, जकड़ाहट आदि व बिच्छू के काटे के समान पीड़ा।
- हृदय में विकृति।
- वात व कफ दोष प्रमुख।

संधिवात

- अधिकतर ५० वर्ष के बाद
- किसी भी जोड़ में
- सिर्फ एक तरफ के जोड़ में
- बुखार नहीं और
- जोड़ों में दर्द व जकड़ाहट।

गाउट

- ४० वर्ष की उम्र के बाद के लोगों में।
- छोटे जोड़ों में
- एक तरफ के जोड़ में
- पित्त दोष के कारण कभी–कभी और
- जोड़ों में सूजन, दर्द, लालिमा आदि।

चिकित्सा

आमवात, संधिवात व गाउट की अलग – अलग चिकित्सा होती है। यहां केवल आमवात की चिकित्सा दी जा रही है।

आमवात के लिये घरेलू इलाज : इस रोग के रोगी के जोड़ों के दर्द व सूजन को तुरंत नहीं उतारना चाहिये, बल्कि शरीर में बढ़े हुये आम व वात दोष को बाहर निकालने के लिये औषधि लेनी चाहिये। इसमें निम्न उपाय लाभदायक होते हैं

- रोगी को कब्ज की शिकायत अधिकतर रहती है इसके लिये एरण्ड तैल एक चम्मच, एक कप दूध में डालकर रात में सोते समय लें इससे दो लाभ होते हैं एक तो पेट में जमा मल बाहर निकल जाता है आंतों में चिकनापन आता है। दूसरा फायदा यह होता है कि वात दोष भी कम होता है क्योंकि एरण्ड तेल, वात दोष को दूर करता है। आमवात के रोगी के लिये कब्ज दुश्मन है।
- सोंठ चूर्ण आधा–आधा चम्मच सुबह, शाम लेना चाहिये। दोपहर व रात्रि में दशमूल या महारास्नासप्तक काढ़ा लेना फायदेमंद है। ये काढ़े बाजार में चूर्ण रूप में उपलब्ध होते हैं। घर में चूर्ण से चार गुना पानी उबालकर काढ़ा बनाकर लेना चाहिये।
- जिस जोड़ में दर्द हो, बालू की पोटली से उसकी सिंकाई करनी चाहिये। इसके लिये बालू को कढ़ाही में हल्का गर्म करके कपड़े में बांधकर, सहनेलायक होने पर धीरे–धीरे चारों तरफ घुमाते हुये सिंकाई करनी चाहिये। इसमें तेल मालिश से

नुकसान होता है।सिंकाई के लिये यदि बालू न मिले तो ईंट, पत्थर लोहे का तवा आदि पदार्थों से सूखी सिंकाई करने का प्रयास करना चाहिये।

- यदि आमवात के रोगी को हृदय में विकृति है तो दशमूलारिष्ट २ चम्मच व अर्जुनारिष्ट २ चम्मच में ४ चम्मच सादा पानी मिलाकर दोपहर व रात्रि में प्रतिदिन लेना लाभकर होता है। ये दोनों दवाएं बाजार में उपलब्ध हैं।

चूंकि आमवात के बार–बार होने का अंदेशा रहता है अतः पथ्य अपथ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

पथ्य :– करेला, परवल, लहसुन, बैंगन, दलिया, चने या मटर की दाल, दूध, सहिजन की सब्जी, पीने के लिये गुनगुना जल, अदरक आदि।

अपथ्य :– दिन में सोना, ठंडा पानी, बासी भोजन, ज्यादा मिर्च–मसाले व चटपटा तथा गरिष्ठ भोजन, दही, खाने के बाद तुरंत सोना मल व गैस के वेग को रोकना, ओंस व नमी वाली जगह में सोना।

जोड़ की रचना

शरीर के विभिन्न कामों व लचीलेपन के लिये जोड़ों की आवश्यकता है जिनके कारण मनुष्य शीघ्र ही बैठ जाता है, खड़ा हो जाता है व दौड़ने लगता है। यदि शरीर में जोड़ न हों तो शरीर सूखे पेड़ के समान एक जगह पर ही स्थिर बना रहेगा तथा जीवन के कामों को कर भी नहीं सकेगा है।

शरीर में जोड़ दो या दो से अधिक हड्डियों के आपस में मिलने से बनता है। ये दो प्रकार के होते हैं हिलने – डुलने वाले और स्थिर। इनमें से जो हिलने – डुलने वाले जोड़ होते हैं वे अपनी जगह पर घूमते हैं जैसे – घुटने व कुहनी का जोड़। दूसरे प्रकार के जोड़ों के बीच में खाली जगह नहीं होती जैस – सिर, नाक, व आंख के जोड़ ये बाहर से त्वचा के कारण नहीं दिखायी पड़ते हैं।

पहले प्रकार के जोड़ के निर्माण के लिये दो या दो से अधिक हड्डियां होती हैं जिनके बीच में थोड़ी सी जगह होती है। जोड़ की हड्डियों के जो सिरे होते हैं उनको पतली व चिकनी झिल्ली ढके रहती है जिससे उनका खुरदरापन खत्म हो जाता है। जोड़ की दोनों हड्डियों को आपस में रस्सी या धागे के समान पतली – पतली रचनाएं आपस में मजबूती से गूंथे रहती हैं। इन रचनाओं के ऊपर मांस व त्वचा रहती है जोड़ों को बनाने वाली इन रचनाओं को रक्त की आपूर्ति छोटी–छोटी धमनियों द्वारा होती है जिससे जोड़ को पोषण मिलता रहता है। जोड़ों के बीच में एक चिकना द्रव (श्लेष्मक कफ) बनता रहता है जो ग्रीज़ का काम करता है ओर जोड़ को हिलने – डुलने में मदद करता है।

जोड़ में यदि दर्द होता है तो निम्न रचनाओं में विकृति होती है:–

१ जोड़ की हड्डियों का बढ़ना,, व हटना।

२ हड्डियों को गूंथे रहने वाली रस्सी जैसी रचनाओं का लचीलापन कम होना, उनमें सूजन होना।

३ जोड़ों को चिकना बनाये रखने वाले द्रव धातु का सूख जाना या कम बनना।

४ जोड़ के मांस या त्वचा में सूजन।

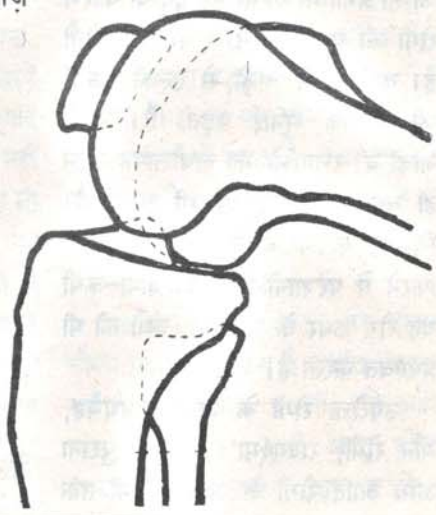

जोड़ों के दर्द की नई दवाः नागरमोथा

डा. नरेन्द्र सिंह, लखनऊ

जोड़ो के दर्द को बोलचाल की भाषा में गठिया नाम से जानते हैं। यह रोग उम्र, जाति, देश व लिंग में भेदभाव नहीं करता अर्थात यह रोग बॉलक, युवा, वृद्ध किसी को भी हो सकता है। यह शरीर के किसी एक या सभी जोड़ों में अपने प्रभाव को दिखाता है। इसमें **निम्न प्रमुख लक्षण** देखने में मिलते हैं:-

- जोड़ में सूजन, दर्द, लालिमा
- जोड़ को फैलाने व सिकोड़ने में परेशानी, जकड़ाहट।

गठिया (जोड़ों का दर्द) एक लक्षण है जो अनेक रोगों में देखने को मिलता है। जिन रोगों में यह होता है उनके प्रमुख नाम हैं- आमवात (रियूमेटायड आर्थराइटिस), गठिया, यौन रोग, मधुमेह, पुराना आँव आदि। जिन रोगों के कारण जोड़ में दर्द होता है उन रोगों के प्रमुख लक्षण भी देखने को मिलते हैं। इन रोगों में अंतर जानने के लिये व रोग की सही पहचान के लिए खून की जांच कराई जा सकती है।

आधुनिक चिकित्सक आमवात का कारण मानसिक तनाव व बीज दुष्टि (जीन्स की खराबी) मानते हैं। इस रोग की विशेषता यह है कि एक बार ठीक हो जाने के बाद यह रोग दुबारा हो जाता है। वृद्धावस्था की गठिया में जोड़ों का लचीलापन खत्म हो जाता है जिसके कारण उन्हें कष्ट होता है। प्रोटीन के पाचन की गड़बड़ी से भी गठिया हो जाता है। इसके कारण खून में यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ जाती है जो जोड़ों में एकत्र होकर दर्द पैदा करती है यह रोग प्रमुख रूप से घुटने को प्रभावित करता है। मधुमेह व आँव के दस्त आदि रोगों के उपद्रवस्वरूपभी गठिया हो सकता है।

गठिया रोग में ऐलोपैथिक दवाएं ज्यादा लाभ नही करतीं क्योंकि ये दवाएं रोग के मूल कारण को दूर नहीं करतीं, सिर्फ जोड़ों की सूजन व दर्द को कम करती हैं। इन दवाओं से लाभ कम होता है और नुकसान ज्यादा। इन दवाओं के कारण शरीर में नये रोग पैदा हो जाते हैं जैसे -पेट में जलन, आमाशय में घाव व कभी-कभी खून बहना आदि।

गठिया रोग में प्रयुक्त होने वाली कार्टिकोस्टेराइड दवाएं अधिक दिनों तक लेते रहने से मधुमेह, टीबी, पेट में घाव व आत्महत्या करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है।

इन कुप्रभावों से बचने के लिये व गठिया रोग में लाभ करने वाली दवा प्राप्त करने के उद्देश्य से बहुत सी जड़ी -बूटियों पर शोध किया गया। फलस्वरूप इस रोग में मोथा घास की जड़ जिसका लैटिन नाम साइप्रस रोटंडस है, लाभकारी पाई गई। यह सूजन कम करने , बुखार उतारने व दर्द कम करने के गुणों से भरपूर है।

यह सम्पूर्ण भारत में काफी अधिक मात्रा में उगने तथा आसानी से प्राप्त होने वाली है।

एक परीक्षण में मोथा घास की जड़ लगी छोटी-छोटी काली गाँठें लेकर, सुखाकर उसका चूर्ण बना लिया। इस चूर्ण को कैपसूल (५०० मिलीग्राम मात्रा वाले) में रखने पर एक कैपसूल में चूर्ण की मात्रा ३२५ - ३५० मि.ग्राम तक ही हो पाती है। एक-एक कैपसूल दिन में तीन बार ३ माह से लेकर १ - २ साल तक खिलाया गया (रोग की तीव्रता के अनुसार)। इस शोध कार्य का प्रयोग रियूमेटायड (आमवात) तथा आस्टियोआर्थराइटिस (संधिवात) के अनेक रोगियों पर १ से ५ साल तक किया गया। इस प्रयोग से ७० प्रतिशत रोगियों को लाभ हुआ। इन दोनों रोगों के अलावा मोथा मधुमेह और आँव के कारण उत्पन्न गठिये में भी गुणकारी पायी गयी। प्रयोग के दौरान इस औषधि का कोई भी हानिकारक प्रभाव देखने को नहीं मिला।

(वैद्य उमेश चन्द्र शर्मा द्वारा मूल लेख से हिन्दी अनुवाद)

CLARION/B/ZP/20/254 HIN

लोक कहावतों में रोग मुक्ति के नुस्खे

चंद्रकांत यादव, वाराणसी

प्राचीन काल में जब आज की भांति चिकित्सक और चिकित्सालय नहीं थे, गांवों में अनुभव और लोक व्यवहार पर आधारित लोक कहावतों का प्रचलन था। जो पीढ़ियों से अनुभूत, सस्ते, सुलभ और अचूक होते थे।प्रस्तुत हैं रोगों से मुक्ति के ऐसे ही कुछ रामबाण नुस्खे –

आंखों के रोग – आज कल बहुत लोगों को दृष्टि की दुर्बलता से परेशानी है। नेत्र रोग से रक्षा और नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए निम्न नुस्खा प्रस्तुत है –

मिट्टी के नवपात्र में त्रिफला रात्रि में डारि।
सुबह सवेरे धोयके आंख रोग कौ टारि।।

अर्थात मिट्टी के नये बर्तन में त्रिफला का पानी रात में भिगों दें। इस पानी से सबेरे आंखों को धो लें। नेत्र ज्योति को तेज करने के सम्बन्ध में एक कहावत है –

काली मिर्च को पीस कर घी – बूरे संग खाय।
नैन रोग सब दूर हों गिद्ध दृष्टि हो जाय।।

अर्थात काली मिर्च को महीन पीसकर घी और शक्कर के साथ खाने से आंखों की ज्योति गिद्ध पक्षी के समान हो जाती है। आंखों की जलन और पीड़ा दूर करने का नुस्खा –

भुनी फिटकरी लीजिये जल गुलाब में घोल।
आंख जलन जाली मिटे वैदन के ये बोल।।

ऐलोपैथ में आंखों में फुल्ली और जाले का उपचार आंखों का आपरेशन है। इस विषय में कहावत है –

अजयपाल के दूध में, घिस कपूर जो नैन,।
फुल्ली मिटै छोटी बड़ी, परि जात है चैन।।

अर्थात बरगद के दूध में कपूर घिस कर लगाने से आंखों की फूली मिट जाती है और आंखों को आराम मिल जाता है।

बालों को काला रखने के लिए – आज कल छोटी आयु में लोगों के बाल पकने लगते है इस सम्बन्ध में कहावत है :–

त्रिफला जल से जो सिर धोवे, बाल स्वेत न वाकै होवें।

अर्थात त्रिफला के पानी से जो व्यक्ति सिर धोकर स्नान करते हैं उनके बाल असमय में सफेद नहीं होते।

बिच्छू विष हरण के विषय में कहावत है :–

लहसुन दूध मदार को दोनों संग मिलाय।
बिच्छू काटै पर धरै तुरतहिं विष मिट जाय।।

अर्थात लहसुन और मदार (आक) का दूध मिलाकर बिच्छू ने जिस स्थान पर डंक मारा हो वहां लगाने से उसका विष तुरन्त उतर जाता है।

यदि कोई **भूल से तेजाब (एसिड)पी गया हो** उसे चूने का पानी पीने से लाभ होता है कहावत है –

यदि कोई तेजाब को धोखे से पी जाय।
जल में चूना पीजिये, सभी असर मिट जाय।।

इसी प्रकार यदि शरीर का कोई अंग शस्त्र आदि से कट करघाव हो जाय तो उसे पकने से बचाने के लिए चूना लगाने को कहा गया है।

किसी शस्त्र से तन कट जावै, चूना भरे पकन नहिं पावै।

इसी प्रकार की बहुत सी लोक कहावते हैं जिनके अनुसार इलाज करने से अनेक रोगों से छुटकारा मिल सकता है।

पेट में कृमि और उनसे बचाव

वैद्य श्रीमती साधना मिश्रा, लखनऊ

मुख्य रूप से चार प्रकार के कृमि पाये जाते हैं जिनसे मनुष्यों में अंतड़ी की विभिन्न प्रकार की खराबी उत्पन्न होती है।

१ – चुन्ने या तंतु कृमि
२ – गंडूपद कृमि
३ – अंकुशमुख कृमि
४ – स्फीत कृमि

चुन्ने या तंतु कृमि

ये कृमि अधिकतर बच्चों में ही पाये जाते हैं। इन कृमियों को आम बोलचाल की भाषा में चुन्ने कहा जाता है। ये सफेद धागे के समान तथा नुकीले मुंह वाले होते हैं। मादा कृमि की लम्बाई नर कृमि की अपेक्षा अधिक होती है। मादा कृमि दस–बारह मि.मी. तथा नर कृमि दो से पांच मि.मी. लम्बे होते हैं। तथा कभी–कभी मल में अपने आप ही निकल जाते हैं। रात में गुदा में खुजली होना इनकी उपस्थिति का लक्षण है। बच्चा बिस्तर में ही पेशाब कर देता है। उसे बार–बार पेशाब करने की इच्छा होती है। कभी–कभी बच्चे की गुदा (कांच) भी बाहर निकल आती है तथा पेचिश आदि के लक्षण मिलते हैं। कई बार बच्चा गुदा को खुजलाकर उसमें घाव भी कर लेता है।

गंडूपद कृमि

खाने–पीने की वस्तुओं के साथ इनके अंडे किसी भी मनुष्य के आमाशय में पहुंच जाते हैं तथा पेट में दर्द, अफारा, पतले दस्त, हृदय रोग, खून की कमी आदि लक्षणों को उत्पन्न करने के कारण ये कृमि बहुत ही कष्टदायक होते हैं। इन कृमियों के विष से कभी–कभी ज्वर, शीत पित्त, रक्तक्षय, पित्ती आदि लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

अंकुशमुख कृमि

इन कृमियों से पीड़ित व्यक्ति जब खुले स्थान पर मल त्याग करता है तो उस मल में ये कृमि डिम्ब रूप में रहते हैं जो वहां की गीली मिट्टी में कई मास तक जीवित रह सकते हैं तथा वहीं पर ये लारवा का रूप धारण कर लेते हैं इनका मुंह सुई जैसा होता है। जब कोई व्यक्ति नंगे पैर ऐसी मिट्टी के संपर्क में आता है तब ये कृमि पैर की त्वचा में घुसकर शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तथा उल्टी, मिचली, अफारा, चक्कर, कमजोरी, पेट में दर्द, खून की कमी आदि लक्षणों को पैदा करते हैं।

स्फीत कृमि

ये फीते के आकार के चपटे तथा लम्बे होते हैं। इनकी लम्बाई आठ से दस फुट होती है। ये हिस्सों के रूप में टूट–टूट कर मल के साथ निकलते हैं। इस कृमि का मुख भाग जब तक बाहर नहीं निकलता तब तक ये आंतों में बढ़ते रहते हैं।

कृमि की उत्पत्ति के कारण

गुड़, केला, मिठाई आदि मीठे पदार्थों का सेवन अधिक करना, शरीर का अच्छी तरह पोषण न होना, दूषित जल का सेवन करना, खाने पीने की चीजें जैसे शाक, सब्जी, फल आदि का बिना अच्छी तरह धोये प्रयोग करना। आयुर्वेद में अग्निमांद्य में यानी पाचन शक्ति के कम रहने तथा पिछला खाया पचे बिना भोजन करना ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिससे कृमि बीज बढ़ता है।

लक्षण

कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो साधारणतया हर प्रकार के कीड़ों में मिलते हैं जैसे – दाँत किटकिटाना, नाक के अग्रभाग तथा मल द्वार में खुजली, शरीर दुबला– पतला, पेट बढ़ा हुआ, ज्वर, मुख में पानी भर आना, पेट में दर्द, मिचली, कै, मिट्टी खाने की आदत होना, भूख बहुत लगना या बिल्कुल न लगना, चेहरा मलिन, सांस में बदबू, नींद से चौंक पड़ना, आक्षेप (दौरा) पड़ना, पतले दस्तों का होना, सोते समय मुँह से लार बहना, आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

बचाव

पेट के कीड़ों से बचने के लिये पहली सावधानी स्वास्थ्य सम्बंधी नियमों का पालन करना है तथा कृमियों के पलने योग्य भोजन का सेवन नहीं करना है। जैसे अधिक मिठाई, सड़ी – गली या बासी खाद्य पदार्थों का सेवन बिल्कुल न करें। खाद्य पदार्थों को खूब अच्छी तरह धोकर प्रयोग में लायें। पानी आदि दूषित हो तो उसे उबालकर छानकर प्रयोग में लायें। कच्ची जमीन पर नंगे पैर कभी न चलें तथा मांसाहारी भोजन का सेवन, यथासंभव न करें।

चिकित्सा

अगर सुविधा उपलब्ध हो तो पहले मल की जांच अवश्य करा लें ताकि यह पता चल सके कि किस प्रकार के कृमि से रोगी ग्रसित है। अन्यथा कुछ ऐसे नुस्खे हैं जिन्हें हम सभी प्रकार के कृमियों में प्रयोग कर सकते हैं :–

– एक लीटर पानी में एक या दो जवा लहसुन पकाकर थोड़ा पानी शेष रहने पर इसे उतार लें। इस पानी की पिचकारी देने से लाभ मिलता है।

– एक कप पानी में नमक मिलाकर इसकी पिचकारी देने से छोटे कृमि मर जाते हैं तथा मल के साथ बाहर निकल जाते हैं।

–पुदीने के रस में शहद मिलाकर पिलाने से पेट के कृमि मर जाते हैं।

–एरंड के कोमल पत्तों का रस एक माशा पिलाने से सभी प्रकार के पेट के कृमि मर जाते हैं।

–बथुये का रस डेढ़ चम्मच (छोटा चाय में चीनी मिलाने वाला चम्मच) लेकर उसमें थोड़ा सा नमक मिलाकर सेवन कराना लाभप्रद है।

– गंडूपद कृमि में पलाश बीज का चूर्ण दो ग्राम गुड़ के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

– कच्ची सुपारी को नींबू के रस के साथ पिलाना लाभदायक है।

– एक औंस पानी में पाँच बूंद तारपीन का तेल मिलाकर उसका एनीमा देने से सभी चुन्ने मर जाते हैं और सबके सब मल के साथ बाहर निकल जाते हैं।

– स्फीत कृमि मांसाहारियों के पेट में विशेष रूप से पाये जाते हैं। इन कीड़ों को बड़े कद्दू के बीज खाने का बड़ा शौक होता है। बच्चे को भूखा रखकर चार–चार घंटे बाद बड़े कद्दू की छिलके सहित गिरियां तीन या चार बार खिला देनी चाहिये। ये कृमि इन गिरियों को खाकर बेहोश हो जाते हैं। बेहोशी के कारण ये स्वयं निकल जाते हैं। एक बात का ध्यान रखना चाहिये जब ये कृमि बाहर निकल रहे हों तो उन्हें सारा का सारा बाहर निकाल देना चाहिये। अगर बीच में से कीड़ा टूट जाये तो पेट के अन्दर बचा हुआ भाग फिर पूरा कीड़ा बन जाता है।।

पृष्ठ 8 का शेष – लंघन – –

लंघन के लिये अयोग्य : निम्न लोगों को लंघन नहीं करना चाहिये–

गर्भवती स्त्री,
बालक,
वृद्ध पुरुष या औरत,
कमजोर शरीर वाला व्यक्ति,
जिनको चक्कर आते हों और
जिनका मुख सूखा रहता हो।

आधुनिक युग के तनाव तथा भाग–दौड़ भरे जीवन में पर्यावरण तथा वातावरण दूषण के प्रभाव के कारण होने वाले रोगों तथा उनके कारण उत्पन्न परिस्थितियों में लंघन अत्यंत उपयोगी है। विशेष रूप से जो लोग तनावभरी परिस्थितियों में रहते हैं उन्हें सात्विक भोजन करना चाहिए जो स्वभाव से पचने में आसान होता है तथा दुष्परिणामों से मुक्त रखता है। सप्ताह या पखवारे में एक बार व्रत या उपवास करना चाहिए। व्रत–उपवास को आडंबर नहीं, शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा का साधन मानना चाहिए। यदि सामान्यजन यह यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनावें तो उनकी चिकित्सा – आवश्यकता तथा दवा का बिल दोनों काफी हद तक सीमित हो सकते हैं। व्रत – उपवास और रोज़ा रखने के पीछे भी प्रयोजन यही है।

हमें एजेंट चाहिए

जीवनीय के हिंदी व अंग्रेज़ी दोनों संस्करणों के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए हमें अपने पाठकों व अन्य एजेंटों की मदद चाहिए है। हमें आशा है कि आप हमें इसकी खुदरा बिक्री व वार्षिक चंदे इकट्ठे करने में मदद करेंगे। इस कार्य के लिए हम उपयुक्त कमीशन देने को तैयार हैं। इच्छुक व्यक्ति संबंधित शर्तों के लिए कृपया निम्न पते पर संपर्क करें।

वितरण मैनेजर, जीवनीय
सी–३/५, रिवर बैंक कालोनी
लखनऊ – २२६०१८

क्या दमा दम के साथ जाता है ?

वैद्य पूर्णचन्द्र जैन, लखनऊ

दमे की बीमारी को चिकित्सा में तमक – श्वास या ब्रान्कियल ऐस्थ्मा कहते हैं। यह बीमारी किसी भी उम्र में हो सकती है। यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिकता से होती है। पचास वर्ष की अवस्था के उपरांत शरीर कमजोर होने से व्याधि के आगमन में तीव्रता देखी जाती है। इसका दौरा अधिकतर ऋतुसंधिकाल में देखा जाता है अर्थात गर्मी समाप्त होकर वर्षा प्रारम्भ होते समय अथवा शीत के प्रारम्भकाल में अथवा शीत समाप्ति काल में दौरा अधिक देखा जाता है।

कुलज प्रवृत्ति :– इस व्याधि में कुलज (पारिवारिक) प्रवृत्ति देखी जाती है। इस कारण दमे की व्याधि वाले स्त्री पुरुष को बच्चों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

दमे का संबध :– तमक श्वास या दमे का संबंध फुफ्फुस एवं श्वसनी से है। श्वसनी को कंठनाड़ी भी कहते हैं क्योकि वह कंठ में रहती है। इसे ही ट्रैकिया कहते हैं। कंठनाड़ी आगे चलकर दोनों फेफड़ों मे छोटी–छोटी शाखाओं में फैलकर वृक्ष की शाखाओं की तरह संपूर्ण फेफड़ों में फैल जाती है।

फुफ्फुस या फेफड़े – ये संख्या में दो होते हैं और वक्षस्थल में हृदय के दोनों ओर पाये जाते हैं। हृदय मध्य में कुछ बायीं ओर को झुका रहता है। फुफ्फुस से हृदय का संबंध धमनी एवं शिरा से रहता है। दाहिने फुफ्फुस से हृदय को शुद्ध रक्त दो फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा जाता है और हृदय से अशुद्ध रक्त फुफ्फुसाभिगा धमनी द्वारा फुफ्फुस को जाता है। इसी प्रकार बायें फुफ्फुस से फुफ्फसीय शिराओं द्वारा शुद्ध रक्त हृदय को और फुफ्फसाभिगा धमनी द्वारा हृदय से अशुद्ध रक्त बायें फुफ्फुस को जाता है।

श्वसनवृक्ष – कंठनाड़ी या श्वासनाड़ी, उसकी शाखाएं दाहिनी एवं बायीं श्वसनी, उसकी फुफ्फुस में फैलने वाली शाखाएं श्वसनिकाएं (ब्रांकियोल्स) और उसकी भी प्रशाखाएं जिनके अंतिम प्रांत वातकोष्ठिका बनाते हैं, श्वसन वृक्ष का निर्माण करते हैं। इनमें कंठनाड़ी और दाहिनी तथा बायीं श्वसनी का कुछ भाग फेफड़ों के बाहर रहता है। शेष भाग तथा श्वसनिकाएं, उनकी शाखा– प्रशाखा तथा वात कोष्ठिकाएं फेफड़ों में रहती है। इसी श्वसन वृक्ष के माध्यम से व्यक्ति सांस लेता है। दक्षिण एवं बायीं श्वसनी अनेक शाखा –प्रशाखाओं में विभक्त होती हैं जिनसे द्वितीयक एवं तृतीयक श्वसनी का निर्माण होता है। आगे इनकी शाखाओं में नाड़ी का कड़ा भाग समाप्त होकर केवल मांस पेशी सूत्रों से श्वसनिका बनती है। श्वसनिकाओं की भी शाखाएं निकलती हैं और अंत में फुफ्फुस के एक खण्डक में प्रवेश करती है। इस शाखा से छः शाखाएं निकलती हैं जो और भी शाखाओं में विभक्त होकर वातकोषीय प्रणालियां बनाती हैं जो अंत में वातकोष्ठिका में खुलती हैं। वातकोष्ठिका की दीवाल पतली होती है और इस प्रकार की कला से बनती है कि इसके चारों ओर रहने वाली रक्त कशेरुकाओं की दीवाल से उसका संपर्क बना रहे और वात कोष्ठिका से वायु का विनिमय रक्त कशेरुकाओं में हो सके। श्वसनिकाओं के मांसपेशी सूत्र, तंत्रिकाओं तथा हार्मोन्स के नियंत्रण में रहते हैं और इन पेशी सूत्रों के संकुचन से वायु के आने का मार्ग सिकुड़ जाता है तथा पेशी सूत्रों की ढील से मार्ग चौड़ा हो जाता है।

श्वास प्रश्वास – सांस लेना एक अनैच्छिक क्रिया है जो हमारे शरीर के धातुपाक एवं सभी क्रियाओं के लिए आवश्यक है। हम एक मिनट में १६ से १८ बार सांस लेते हैं और इस क्रिया के प्रति हम साधारणतः सजग नहीं रहते। परन्तु जब यह क्रिया बढ़ जाती है तब हमें इसका ज्ञान होता है। इसे ही श्वासकष्ट कहते हैं। दमे में श्वासकष्ट सबसे अधिक होता है। सांस लेने में दो क्रियाएं होती हैं श्वास लेना, जिसे कि श्वास कहते हैं, यह सक्रिय क्रिया होती

है तथा दूसरी निश्वास या श्वास छोड़ना, जो कि निष्क्रिय क्रिया है।

दमे अथवा तमक श्वास में श्वसनवृक्ष

दमे अथवा श्वास में श्वसन वृक्ष में विकृति आने से श्वासमार्ग में रुकावट आने लगती है जिससे श्वास सरलता से नहीं आता, बलपूर्वक तीव्रता से लेना पड़ता है इसे ही श्वास कष्ट कहते हैं।।

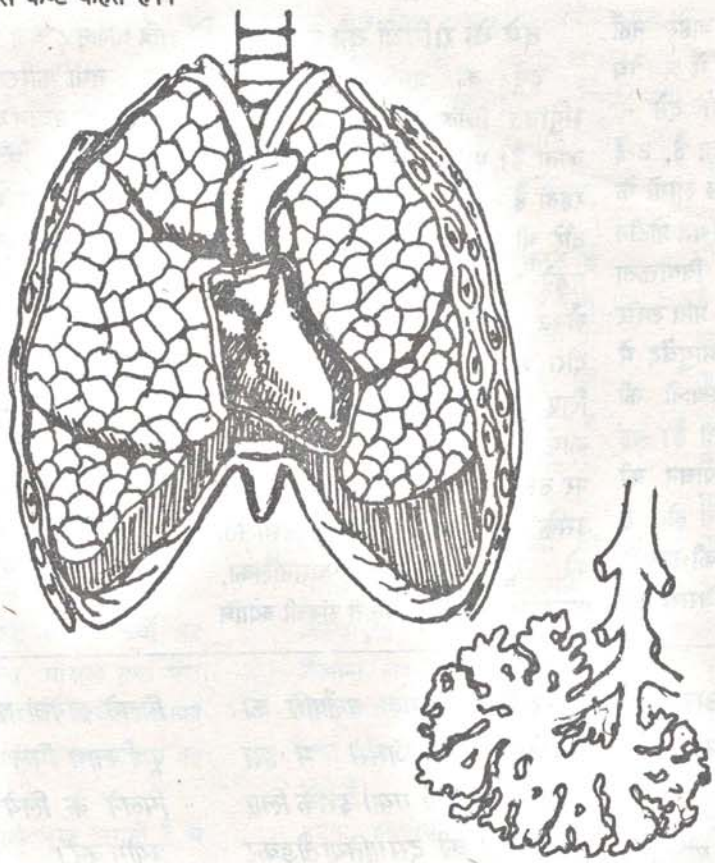

श्वसन वृक्ष का अन्तर्भाव आयुर्वेद के अनुसार प्राणवह स्रोतस् में होता है क्योंकि उसी के माध्यम से शरीर को प्राण वायु प्राप्त होती है। इस श्वसन वृक्ष की विकृति में वात एवं कफ दोष प्रधान रूप से कार्य करता है। पित्त दोष से अधिष्ठान में विकृति होती है। वात दोष अनुलोम गति से श्वसन वृक्ष को साफ एवं रिक्त रखता है तथा श्वसन वृक्ष से जाने वाली वातावरण की वायु को शरीर के अनुरूप नमी एवं उष्णता प्रदान करता है। यह कार्य नासिका की श्लेष्मल कला द्वारा होता है।

श्लेष्मल कला में रहने वाले रोमशभाग वायु के साथ आये धूल, धूम्र, जीवाणु आदि अहितकर अंशों को रोक लेते हैं जिससे श्वसनवृक्ष में विकृति न आने पावे।

श्वसन वृक्ष में अवरोध

तमक श्वास में वायु की विपरीत गति हो जाती है तथा कफ का अवरोध होने से व्यक्ति खुलकर सांस नहीं ले पाता। श्वास नलिकाओं में स्थित कफ ही श्वास का कारण होता है। यह अत्यन्त गाढ़ा एवं चिपचिपा होने से श्वासनलिकाओं की मांसपेशियों को संकुचित कर श्वासनलिकाओं के मार्ग को संकुचित कर देता है और व्यक्ति को श्वास लेने में अत्यधिक कष्ट होता है। श्लेष्मा निकलने पर श्वासमार्ग के कुछ खुलने से रोगी आराम महसूस करता है और पुनः इसी प्रकार की स्थिति आने से बार-बार दौरे पड़ते हैं।

दमे का कारण

श्वसनियों का संकुचन एवं श्वासमार्ग का अवरोध क्यों होता है इस संबंध में प्राचीन काल से आज तक वैज्ञानिक खोज में लगे हैं परन्तु इसका कोई समुचित उत्तर प्राप्त नहीं हो सका है। कुछ के अनुसार दमे में कोई वंश परंपरागत विकृति अथवा श्वसनवृक्ष की रचना में विकृति होती है। इससे ऐसे मनुष्यों का श्वसन तंत्र थोड़ी सी उत्तेजना से उत्तेजित हो जाता है और उनके मस्तिष्क में स्थित श्वासकेन्द्र भी उत्तेजित होकर श्वास कष्ट बढ़ा देता है। कुछ लोगों के मत से दमे से ग्रसित व्यक्ति धूल, धुएं, बरसात, ठंडी हवा, कुछ पशु पक्षियों की त्वचा, उनके पंख अथवा उनकी गंध तथा कुछ खाद्य पदार्थों के प्रति असहनशील होते हैं। इसे ही इन द्रव्यों के प्रति प्रत्यूर्जता (एलर्जी) कहते हैं। कुछ व्यक्ति कुछ औषध द्रव्यों के प्रति असहनशील होते हैं। ऐसे द्रव्यों के संपर्क में आने पर शरीर में विजातीय द्रव्यों की उत्पत्ति होती है जिनसे हिस्टेमीन तथा तत्सम पदार्थों का सरण होता है। ये द्रव्य श्वसनी की मांसपेशियों को संकुचित कर श्वसन मार्ग में अवरोध

पैदा करते हैं जिससे दमे का दौरा प्रारम्भ हो जाता है। कुछ लोगों के मत से नासिका के मध्य की अस्थि की रचना में विकार होने से बाह्य जीवाणुओं का उपसर्ग शीघ्र हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों में सर्दी जुकाम हमेशा बना रहता है। उपसर्ग के कारण श्वासनलिकाओं में कफ अधिक मात्रा में बनता है और श्वासनलिकाओं की विशिष्ट रचना स्थिति के अनुसार कफ बाहर नहीं निकलता जिससे श्वसन वृक्ष में अवरोध से दमे का दौरा पड़ता है। दमे के रोगियों का पाचन बिगड़ जाता है, उन्हें भूख अच्छी नहीं लगती। कुछ लोगों के मत से अंडा एवं मांसाहार में स्थित प्रोटीन का सेवन शरीर में आंतरिक विषाक्तता पैदा करता है और इन द्रव्यों के प्रति शरीर को असहनशील बनाता है। आयुर्वेद में दमे की उत्पत्ति में पित्त स्थानों की विकृति एक कारण मानी जाती है। यह संभव प्रतीत होता है कि पाचन की विकृति से आमदोष की उत्पत्ति होती है जो श्वासनलिकाओं में कफ की उत्पत्ति एवं अवरोध उत्पन्न करता है जिससे दमे का दौरा आता है। प्रायः देखा जाता है कि एलर्जी से उत्पन्न होने वाली अन्य व्याधियों से दमें का संबध रहता है। इनमें त्वचा में खुजली, एक्जिमा आदि रोग आते हैं। यदि किसी व्यक्ति को दमे के साथ एलर्जी संबधी अन्य रोग हो तो दमे के दौरे के समय वे रोग शान्त रहते हैं। इसी प्रकार त्वचा के इन रोगों के प्रकोप के समय दमा शांत रहता है।

दमे के रोगियों को सलाह

दमे की प्रारंभिक अवस्था में समुचित चिकित्सा से दमा ठीक हो जाता है। पुराना होने पर दवा से शान्त रहता है तथा समुचित उपायों से दमे के दौरे भी कम हो जाते हैं। दमा का दौरा पड़ने पर योग्य चिकित्सक से सलाह लेकर समुचित औषधि का प्रयोग करें। दौरा शांत हो जाने पर दौरा रोकने के लिए चिकित्सक की सलाह के अनुसार कार्य करें। एलर्जी का कारण ज्ञात होने पर उससे दूर रहने का प्रयत्न करें और उसके प्रति अपनी अतिसंवेदनशीलता को दूर करावें। श्वासनलिका, फुफ्फुस, हृदय एवं यकृत संबधी व्याधि होने पर उसका तुरंत उपचार करावें। रोगी के नाक एवं गले की परीक्षा कर वहां उपस्थित विकृति को दूर करें। जहां तक संभव हो भूख के अनुसार ही भोजन करें तथा पाचन को ठीक रखें। मांसाहार का सेवन न करें तो अच्छा है। तम्बाकू, गांजा आदि का सेवन पूर्ण रूप से बंद करें। ठंडे एवं कफ वर्द्धक द्रव्य दही, खटाई, मिर्च, चावल का सेवन न करें। रात्रि भोजन ८ बजे के पूर्व कर लें। धूल, धुआं, तथा कारखानों की प्रदूषित गैसों से बचने का प्रयत्न करें। शुद्ध हवा में घूमें एवं फुफ्फुस की श्वासधारिता को बढ़ाने का प्रयत्न करें। बलपूर्वक तीव्र श्वास लेने और बल पूर्वक तीव्र निश्वास छोड़ने की क्षमता को श्वासधारिता कहते हैं। दमे के रोगी की यह क्षमता कम हो जाती है। इस क्षमता को बढ़ाने में प्राणायाम बहुत उपयोगी है। दमे के रोगियों तथा दमे की आशंका वाले व्यक्तियों को योग्य चिकित्सक की देखरेख में श्वासधारिता बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये।

गृध्रसी (सियाटका) का अनुभूत प्रयोग - हरसिंगार

मैं गृध्रसी के रोग से पीड़ित था, इसमें मुझे कमर से लेकर एड़ी तक के हिस्से में जकड़ाहट व दर्द था, इस कारण चलने फिरने में असमर्थ था। मुझे रीढ़ की अस्थियों में कोई विकृति नहीं थी। इस रोग में मैंने "हरसिंगार" नामक वनौषधि का प्रयोग किया, जिससे मैं इस रोग से मुक्त हो गया। इसके लिए हरसिंगार की दस पत्तियां तोड़कर दो कप पानी में डालकर काढ़ा बना लें, फिर इस काढ़े को छानकर तीन भागों में बराबर-बराबर मात्रा में बांटकर सुबह, दोपहर, शाम को पियें। तीन दिन के अंदर लाभ मिलने लगेगा व दो सप्ताह में पूर्ण लाभ मिलेगा। पूर्णतः लाभ मिलने के लिये ४१ दिन तक प्रयोग करें।

-डा. भारतेन्दु प्रकाश,
विज्ञान शिक्षा केन्द्र
बांदा।

कफज प्रकृति के लक्षण

वैद्य सुल्तान अली खान, लखनऊ

पिछले अंकों में वैद्य जी ने वातज एवं पित्तज प्रकृति वाले व्यक्तियों के लक्षण बताए थे। प्रस्तुत लेख में वैद्य खां साहब ने कफज प्रकृति के व्यक्तियों के लक्षण बताए हैं। आशा है इन सरल लक्षणों की सहायता से पाठक अपनी प्रकृति का कुछ अंदाजा लगाकर अपने लिए उपयुक्त आहार एवं औषध द्रव्यों को पहचान कर सेवन कर लाभ उठाएंगे।

- कफज प्रकृति वाले व्यक्तियों का रंग साफ–गोरा होता है। इनके चेहरे पर दाग कम देखने को मिलते हैं। सर्दी के मौसम में इनकी त्वचा रूखी नहीं होती है।
- कफज प्रकृति के व्यक्तियों को पसीना कम निकलता है जो पित्तज प्रकृति वाले व्यक्तियों की अपेक्षा दुर्गन्धित नहीं होता।
- कफज प्रकृति के व्यक्तियों का शरीर गठीला, मांसल तथा भरा –भरा सा होता है। अक्सर इनका कद छोटा या मध्यम आकार का होता है।
- इनको अधिक भूख लगती है व भूख ये को ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सकते।पौष्टिक व घी, तेल आदि चिकनाई से बना आहार लेने पर शरीर में वृद्धि होने लगती है।
- कफज प्रकृति के व्यक्ति किसी काम को शुरू करने से पहले उस पर काफी सोच विचार करते हैं और उचित लगने पर ही उस काम में हाथ डालते हैं।इस प्रकृति के व्यक्ति काम में जल्दबाजी नहीं करते हैं इनका चलना –फिरना व दूसरे कामकाज धीमी गति से होते हैं।
- कफज प्रकृति के मनुष्यों की त्वचा, तलवे–हथेली माथा, अपेक्षाकृत ठंडा और छूने में चिकना महसूस होता है।इनके नाखून सफेद व मजबूत होते हैं तथा दांत भी चमकदार व साफ होते हैं।
- इनका स्वभाव, मधुर व शान्त होता है। ये जल्दी गुस्सा नहीं करते और लड़ाई–झगड़े में पड़ना पसंद नहीं करते।
- इस प्रकृति के व्यक्ति मेहनत के कामों से जी चुराते हैं। इनको आराम बहुत पसंद होता है अतः इन्हें अक्सर बैठे रहने या दिन में भी सोते रहने की आदत होती हे।चलते समय, कफज प्रकृति के व्यक्ति, पैरों को पूरा जमाकर, जमीन पर रखते हैं।
- कोई नई चीज इनको देर से समझ में आती है परन्तु जिस विषय को एक बार समझ लेते हैं उसे जल्दी नहीं भूलते।
- इनका पाचन थोड़ा कमजोर होता है अतः पेट की तकलीफें इनमें ज्यादा होती हैं।
- .इस प्रकृति के व्यक्ति का वैवाहिक जीवन उत्तम व अधिक संतान वाला होता है।
- किसी भी प्रकार की आपत्ति के आ जाने पर ये विचलित नहीं होते और आसानी से उसका हल निकाल लेते हैं।
- इनके सिर के बाल घने, काले व सुन्दर तथा घुंघराले होते हैं। इनके बाल अन्य प्रकृति वाले व्यक्तियों

शेष पृष्ठ 40 पर--

शुद्ध, प्राकृतिक, स्वास्थ्यप्रद

'पराग'

उत्पाद

उपभोक्ताओं की पहली पसन्द !

	89–90	86–87
'पराग' तरल दूध		
वि क्रय (हजार ली. प्रतिदिन)	**264.51**	**191.44**
'पराग' मक्खन		
वि क्रय (मी.टन)	**1393.25**	**1113.90**
'पराग' घी		
वि क्रय (मी.टन)	**2523.12**	**1254.42**
'पराग' पनीर		
वि क्रय (मी.टन)	**153.74**	**103.17**
'पराग' स्किम्ड मिल्क पाउडर		
वि क्रय (मी.टन)	**210.30**	**120.09**

प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लि.

29, पार्क रोड, लखनऊ-226001

नाम निराला, काम निराला।
है 'पराग', सबसे गुण वाला।।

गोखरू

वैद्य कृष्ण चन्द्र भूषण, चंडीगढ़

दो भिन्न जातीय पौधों के फल छोटा गोखरू और बड़ा गोखरू के नाम से आयुर्वेदीय प्रयोगों में प्रयुक्त होते हैं।

भाषावार नाम :संस्कृत– *गोक्षुर, त्रिकंटक, वनश्रृंगाटक;* हिन्दी – *गोखरू छोटा, गुरकुल;* बांगला– *गोखरी ;* पंजाबी– *भंखडा;* तेलुगु– *पलेरु मुलू, त्रिजी;* तमिल– चे रूनिरंची लैटिन - *ट्रिबुलस टेरिस्ट्रिस लिंन*

बडे. गोखरू के नाम – संस्कृत– *बृहत् गोक्षुरू तिक्त गोक्षुर;* हिन्दी– *बडा गोखरू;* तेलुगु– *पेछ पलेरु,* तमिल– *पेरू निरंजी।* लैटिन – *पडेलियम म्यूरैक्स लिन।*

छोटा गोखरू समस्त भारत तथा पाकिस्तान की रेतीली भूमि में पैदा होता है तथा बड़ा गोखरू दक्षिण भारत तथा समुद्री तट के आस–पास प्रचुरता से होता है।

औषधीय गुण धर्म

छोटा गोखरूशीतल, शामक, मूत्रल, बल्य तथा कामोत्तेजक, दीपक–पाचक, अश्मरीहर, रसायन, मूत्रमार्ग शोधक, हृद्य एवं शोथहर है।बड़े गोखरू में उपंरोक्त सभी गुण हैं परन्तु यह छोटे गोखरू से अधिक शुक्रल है तथा इसमें पोटाशियम की मात्रा उससे कम है। जबकि छोटा गोखरू बडे की

शेष पृष्ठ 40 पर – –

औषधीय इसबगोल

अनुज कुमार सिंह गोंडवा, हरदोई

वनस्पति जगत से हमें तरह-तरह की औषधियां मिलती हैं। इनमें प्रचलित औषधि है "इसबगोल की भूसी" जो पेट की विभिन्न बीमारियों जैसे कब्ज, दस्त, आंव, पेचिश आदि को शीघ्र ठीक करने की क्षमता रखती है। जब आंतों की भीतरी सतह में सूजन आ जाती है या घाव हो जाते हैं, तो उस अवस्था में पेट की बीमारियों के उपचार के लिए यह एकमात्र ऐसी दवा है जिसके प्रयोग से आंतों या शरीर में किसी प्रकार का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है।

इसबगोल *(प्लेंटेगो ओवेटा)* की उत्पत्ति भूमध्य सागरीय क्षेत्रों और पश्चिम एशिया के देशों में मानी गई है। इसबगोल शब्द फारसी "इसब और गोल " शब्दों से बना है जिनके अर्थ "घोड़े के कान" है। इसके बीज घोड़े के कान के आकार के होते हैं, इसी कारण इस पौधे को इसबगोल नाम दिया गया है।

इसबगोल एकवर्षी पौधा है। इसकी ५० जातियों में से लगभग १० जातियां भारत में पायी जाती हैं, जिनमें तीन *प्लेंटेगो आवेटा, प्लेंटेगो इंडिका* तथा *प्लेंटेगो सीलियम* मुख्य हैं।

इसकी फसल अनेक प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। बुवाई के

बाद लगभग ३-४ महीनों में फसल तैयार हो जाती है।

इसके बीज अपनी भूसी के चिपचिपे पदार्थ के लिए मूल्यवान समझे जाते हैं। बीजों के ऊपर एक सफेद पतली झिल्ली के रूप में भूसी रहती है। भूसी को अलग करने के लिए बीजों को कई बार दला व कूटा जाता है। यह काम हाथ से एमरी ग्राइंडर से किया जाता है। उसके बाद छलनी से छानकर भूसी को अलग कर लिया जाता है।

इसबगोल की भूसी में पानी सोखने की अद्वितीय क्षमता होती है। पानी सोखकर यह भूसी एक चिपचिपे पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसी चिपचिपे पदार्थ को दवा के रूप में खाया जाता है। इसका प्रयोग दवा के अतिरिक्त आइसक्रीम, रंग रोगन तथा लेई बनाने में भी किया जाता है। परन्तु इसका मुख्य

शेष पृष्ठ 51 पर--

औषध द्रव्य- ३,

सत्यानाशी

वैद्य अखिलेश प्रसाद सिंह एवं वैद्य सत्यदेव पाण्डेय, लखनऊ

सत्यानाशी सालाना पैदा होने वाला पौधा है। यह दो से तीन फीट ऊंचा और महीन कांटों से युक्त होता है। इसके पत्ते लम्बे होते हैं जिन पर कांटे लगे होते हैं। पत्तों के किनारे कटे होते हैं। पत्ते पर सफेद धारियां पाई जाती हैं। फूल पीले रंग के तथा दो इंच व्यास के होते हैं। फल एक से डेढ़ इंच लम्बे तथा धारीदार होते हैं। बीज काले रंग के राई के दाने के सदृश होते हैं परन्तु छूने में राई की अपेक्षा रूखे होते हैं। इसका दूध (क्षीर) पीला होता है, इसलिए इसे स्वर्णक्षीरी भी कहते हैं इसकी जड़ चोक नाम से पुकारी जाती है।

इसकी उत्पत्ति सम्पूर्ण भारत में होती है। यह सड़क के किनारे, रेल की पटरियों के किनारे तथा टीले आदि ऊंचे स्थानों पर उगी हुई देखी जाती है। यह उत्तर भारत में बंगाल से लेकर पंजाब तक अधिक मिलती है। इसकी खेती किसी भी मिट्टी पर की जा सकती है, जहां अधिक पानी का जमाव न होता हो। इसके बीजों को अगहनी फसल की बुआई के समय बोने पर अच्छी फसल मिल सकती है। यह पौधा मूल रूप में अमेरिका का निवासी है।

भाषावार नाम - हिन्दी– *सत्यानाशी, भडभांड, कंटैला;* बांग्ला – *शियालकांटा;* मराठी – *कांटेधोत्रा;* गुजराती – *दारुडी;* तमिल – *कुडियोट्टि;* तेलुगु – *इट्टूरि, कत्रडतुरि;* मलयालम – *पोत्तुम्माट्टम;* लैटिन -*आर्जोमोन मैक्सिकाना लिन।*

सत्यानाशी का दूध, बीज, तैल और जड़ का औषधि में प्रयोग किया जाता है।

सत्यानाशी का अन्तः तथा बाह्य दोनों रूपों में प्रयोग किया जाता है। प्रवाहिका और अतिसार में इसके बीज का चूर्ण के दो से चार ग्राम तक जल से लें। तैल की मात्रा 2 से 3 बूंद तक है। कभी भी तेल की मात्रा ५ मि.ली. से अधिक न लें वरना हानिकारक पार्श्व प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। अतिसार और प्रवाहिका में इसे प्रयोग करते समय ध्यान रखें कि इसके लेने के बाद एक – दो वमन हो सकते हैं रोगी को चीनी का शर्बत नींबू के रस में मिलाकर पिलावें। भोजन में मड्ढा भात और नमक के साथ दें। इसके बीज चूर्ण को गले की खराश, खांसी और दमा में एक से तीन ग्राम की मात्रा में देने से लाभ होता है।

कामला, की अवस्था में इसकी जड़ के स्वरस को पांच से 10 मि.ली. दूध के अनुपान से देते हैं। दवा लेने के बाद रोगी को ४ घंटे तक कुछ भी खाना न दें। इसकी जड़ का स्वरस सप्ताह में दो खुराक तीन दिन के अन्तर पर उपर्युक्त रोगों में दें। दवा के बाद खिचड़ी का पथ्य एक सप्ताह तक दें।

निषेध-इस दवा को गर्भिणी और बच्चों में प्रयोग न करें।

सत्यानाशी के दूध का प्रयोग बाह्य रूप से करते हैं। त्वचा के पुराने विकारों में खाने की दवा के साथ विकृत स्थान पर इसका लेप भी लगायें। लेप प्रतिदिन दो बार लगायें।

सुदाब

डा. मोहम्मद अताउल्लाह शरीफ, अलीगढ़

यह एक छोटा पौधा है जिसके मसलने पर एक अप्रिय तीक्ष्ण गंध आती है। पत्तियां छोटी और गोल होती हैं। फूल कुछ-कुछ पीले होते हैं और बीज पुटक में बंद होते हैं। यूनानी चिकित्सा पद्धति में समूचे पौधे का प्रयोग होता है। पत्तियों का प्रयोग चर्मरोगों के इलाज में होता है और ये बाजार में बर्गे सदाब नाम से आसानी से मिल जाती हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी-*सिताब, सुदाब, सदाब* ; संस्कृत - *सर्पदंष्ट्रा;* पंजाबी - *सुदाब*; बांग्ला- *इस्पंद*; मराठी -*सताप* ; गुजराती- *सताब* ; तमिल -*अरुवाण* ;कन्नड़ -*सादाबु* ; मलयालम - *अरुदम* ; लैटिन- *रुटा ग्रैवियोलेन्स।*

सुदाब की **दो किस्में** पायी जाती हैं जंगली और बोस्तानी। इसका उत्पत्तिस्थान दक्षिणी यूरोप और फारस आदि देश हैं। भारत में भी इसके पौधे लगाये जाते हैं। भारत में इसका आयात मुख्यतः फारस से होता है। बहुत दिनों से इस वनस्पति का प्रवेश भारत में होने पर भी यह यहां का निवासी पौधा नहीं हो सका है। पूरा पौधा और उससे निकाला हुआ तेल औषध में काम आता है। यह गरम और रूक्ष प्रकृति का द्रव्य है।

यह शरीर को **विषों** से सुरक्षित रखता है। सांप, बिच्छू, भिड और कुत्ते के काटे स्थान पर इसका पतला लेप गुणकारी हे। **शोफ** और सर्वांग शोथ में यह तिला और लेप की भांति प्रयुक्त होता है। यह आहार का पाचन करता, भूख लगाता, आमाशय को शक्ति देता, अफारा दूर करता, वायु को विलीन करता और आमाशय, यकृत, एवं प्लीहा की सर्द बीमारियों में गुणकारी है। इसका पेय रुके हुए **मासिक धर्म** को चालू करता है। इसके बीजों का चूर्ण स्थायी बल प्रदान करता है।

श्वित्र (सफेद दाग) के इलाज में यह अत्यन्त उपयोगी है। घी और शहद के साथ मिलाकर लेप करने से यह दाद, खाज, विसर्प आदि चर्मरोग दूर करता

शेष पृष्ठ 39 पर - -

वमन या उल्टी

वैद्य सत्यदेव पाण्डेय एवं वैद्य अरुण श्रीवास्तव, लखनऊ

ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य कमजोर रहता है क्योंकि इस ऋतु में सूर्य अधिक गर्म रहता है जिसके कारण उसके शरीर का बल कम हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में कम मात्रा में एवं जल्द पचने योग्य भोजन की आवश्यकता होती है। परन्तु लोग स्वाद के लोभ में गरिष्ठ, मिर्च – मसाले व चिकनाई से युक्त भोजन अधिक मात्रा में ले लेते हैं जिससे वह पच नहीं पाता। सही रूप से भोजन के पच न पाने के कारण वह पेट में लम्बे समय तक बना रहता है जिससे अपच या कब्ज की शिकायत हो जाती है। इन रोगों के उपद्रव स्वरूप"वमन" होता है। वमन की क्रिया होने के पहले मुख में लार आना, बैचैनी होना, पेट के ऊपरी भाग का फूला रहना व जी मिचलाना जैसे लक्षण पैदा होते हैं जो वमन होने की पूर्व सूचना दे देते हैं।

आयुर्वेद के मत से जल्दबाजी में भोजन करने से कच्चा व अधपका भोजन करने से घृणा जैसे मानसिक भावों के कारण अथवा अप्रिय खाद्य पदार्थो के सेवन से आमाशय में उत्क्लेश होकर मुंह से कफ और पित्त मिश्रित अन्न बाहर निकलता है। इसे वमन, उल्टी या कै कहते हैं। विभिन्न रोगों जैसे अम्लपित्त, अजीर्ण, कृमि या गर्भावस्था में भी आमाशय में उत्क्लेश के कारण वमन होता है।

अतः शरीर के अयोग्य पदार्थो को निकालने के लिए वमन शरीर की प्राकृतिक व्यवस्था है जिससे अपक्व आहार अन्न विष के रूप में संचित न हो। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी वमन के **तीन प्रमुख कारण** माने हैं :–

१. किसी भीं प्रकार की घृणा, भय, या वमन होने की स्मृति आदि मानसिक भावों के कारण मष्तिष्क में वमन केन्द्र उत्तेजित हो जाता है और वमन होने लगता है।

२. अरुचिकर भोजन या असात्म्य भोजन आमाशयिक कला में क्षोभ उत्पन्न करता है इसके कारण आध्मान (पेट में गैस भर जाना) के कारण भी मुख से वमन होता है।

३. विषैले प्रभाव वाले अथवा वामक वस्तुओं के खाने या लगाने से वमन केन्द्र अचानक प्रभावित हो जाता है। जैसे तांबे या नमक मिले पानी के सेवन से वमन होने लगता है। कभी –कभी वृक्क के रोगों के कारण भी वमन होने लगता है। परन्तु इस प्रकार के वमन में मितली होती है।

प्रकार एवं लक्षण :– वमन पांच प्रकार के बताये गये हैं :–

वातज – इसमें वमित द्रव्य ऊंची डकार के साथ कठिनता से पतला, कसैला, लालिमा लिए हुए व थोड़ा सा निकलता है। वमन वेग तीव्र एवं छाती, पीठ, सिर, तथा नाभि प्रदेश में पीड़ा खांसी, स्वरभेद तथा मुख का सूखना आदि लक्षण होते हैं।

पित्तज – इसमें वमित द्रव्य पीला, हरा व कड़ा होता है तथा वमन के समय पेट एवं गले में जलन उत्पन्न करता है। जिसके कारण प्यास, मुख एवं तालु का सूखना, मूर्च्छा, सिर, तालु, गले तथा आंखों में जलन होती है।

कफज – इसमें वमित द्रव्य चिकना, गाढ़ा, श्वेत, मीठा तथा कफ युक्त होता है। वमन के समय रोमांच तथा थोड़ी वेदना होती है तथा भारीपन, अरुचि, नींद आना मुंह का मीठा बना रहना भी पाया जाता है।

त्रिदोषज – इसमें नीला, गाढ़ा, गर्म कभी – कभी रक्त युक्त, नमकीन या खट्टा वमन होता है। इसमें पेट दर्द, भूख न लगना, भोजन न पचना, जलन, श्वास एवं मूर्च्छा आदि लक्षण मिलते हैं।

आगन्तुज : इस प्रकार का वमन विभिन्न कारणों से हो सकता है जैसे भय, घृणा, शोक, गर्भावस्था, कृमियों के कारण, एवं अरुचिकर भोज्य पदार्थों का सेवन आदि।

पाचन की सभी अवस्थाओं से मानसिक भावों का भी संबन्ध रहता है। जैसे भयानक दृश्य या दुख की अवस्था में आमाशय एवं आंतों की गति कम हो जाती है। जिससे अपचन एवं कब्ज हो जाता है। इनसे तथा अवसाद की अवस्था में आमाशय अन्न या जल को सहज ग्रहण

नहीं कर पाता है जिसके कारण वमन हो जाता है।

चिकित्सा

सभी प्रकार के वमन आमाशय के उत्क्लेश से उत्पन्न होते हैं। अतः इसमें उपवास करना चाहिए जिससे आमाशय एवं आंते अपनी प्राकृतिक गति करने लगें। तभी मनोनुकूल एवं शीघ्र पचने योग्य आहार लेना चाहिए। डकार आने पर वायु निःसारक औषधि जैसे हरीतकी चूर्ण ३ ग्राम जल के साथ या शहद के साथ सुबह शाम सेवन करें।

–ज्यादा वमन होने की स्थिति में हरीतकी, भृंगराज प्रत्येक २ – २ ग्राम ४ ग्राम पुराने गुड़ और गुनगुने पानी के साथ लें।

– मिश्री को नींबू के रस में मिलाकर चाटें।

– पीपल के पत्ते आग में जलाकर उन्हें थोड़े पानी के अन्दर बुझा लें फिर पानी को निकाल कर घूंट – घूंट पिलावें।

– ४०० ग्राम सफेद जीरा बिना पिसा हुआ, १० ग्राम पिसे हुए काले नमक में मिलाकर नींबू के रस में २४ घंटे भिगो रखें फिर छाया में सुखा लें इसे जी मिचलाने, खट्टी डकार आने एवं वमन में देना चाहिए।

– अनार छाल चूर्ण ३ ग्राम अथवा विडंग चूर्ण ३ ग्राम शहद के साथ सुबह शाम दें।

असाध्य लक्षण

निम्नलिखित लक्षणों के उत्पन्न होने या उपर्युक्त औषधियों से लाभ न होने की स्थिति में किसी अनुभवी चिकित्सक से परामर्श लें :

वमन के साथ खांसी एवं श्वास (दमा)का अधिक होना।

वमन के साथ खून या मवाद का आना।

वमन का लगातार होते रहना।

वमन में खून के थक्के आना।

पथ्यः सुपाच्य, रुचिकर एवं सादा भोजन, विश्राम एवं निद्रा।

अपथ्य : अरुचिकर देर से पचने वाले भोजन, तली एवं मसालेदार खाद्य पदार्थ, चिन्ता आदि।

पृष्ठ 11 का शेष - दादी मां

दादी मां – देखो, ताल तथा पोखरों में बरसात में घोंघा नामक जीव होता है। पांच घोंघे लाकर उन्हें धूप में डाल दें। इससे वे मर जायेंगे और एक हफ्ते में सूख जायेंगे। जब वे बिल्कुल सूख जायं तो उन्हें पानी से धोकर साफ कर लें और गोबर के १० कण्डे लेकर उनके बीच में रख दें। चारों तरफ कण्डे लगाकर आग लगा दें। जब कण्डे जल जायं और आग बुझकर ठंडी हो जाय तब इन घोंघों को सावधानी से निकालकर राख अलग करके पीस लें एक शीशी में भरकर रख दें और कार्क लगा दें। सूखा रोग वाला बच्चा जिसके शरीर का मांस सूख गया हो, चलने–फिरने में असमर्थ हो, रात– दिन रोता हो, हर समय खाना मांगता हो, ऐसे बच्चों को, ४ चावल की मात्रा में घोंघा भस्म में २ चम्मच चतुर्भुजी मिलाकर दिन– रात में ४ बार शहद के साथ बच्चों को चटायें। इसके १५ दिन चटाने से धीरे–धीरे बच्चा स्वस्थ होने लगता है और दो मास में बिल्कुल ठीक हो जाता है। मगर इसके साथ उसको रोज शंखपुष्पी का तेल भी लगाना चाहिए। शंख –पुष्पी के तेल के बनाने की विधि इस प्रकार है :–

शंखपुष्पी हरी २५० ग्राम, पानी २ लीटर, दोनों को एक भगोने में डाल कर आग में पकायें। जब पानी आधा लीटर रह जाय तो ठंडा करके छान लें । इसमें आधा लीटर तिल का तेल डाल बड़े भगोने में धीमी आंच पर पकायें, जब पानी जल जाय तो तेल को उतार कर ठंडा होने पर छान कर बोतल में भरकर रख दें। यही तेल सूखा रोग वाले बच्चों को लगाने से उन्हें रोगमुक्त करता है। इस प्रकार झीलों तालाबों तथा पोखरों के किनारे प्याज की आंड़ी की भांति एक कंद उत्पन्न होता है जिसे जलकंद या जंगली प्याज कहते हैं। उपरोक्त विधि से इसका भी तेल बनाकर सूखा रोग वाले बच्चों के शरीर में १–२ मास रोज मालिश करने से पूर्ण लाभ होता है। यह तेल और घोंघा का भस्म तथा चतुर्भुजी का चूर्ण हमारे पास सदा रहता है और हम रोगी को देती भी हैं। लिख लिया बेटी ?

सरस्वती – हां दादी, लिख लिया, अब चलती हूं। चरण स्पर्श।

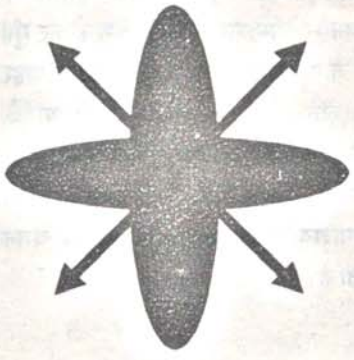

पित्तपापड़ा

वैद्य कृष्ण चन्द्र भूषण, चंडीगढ़

पित्त पापड़ा नाम से भारत के भिन्न– भिन्न भागों में भिन्न– भिन्न पौधे प्रयुक्त होते हैं। फ्यूमेरिएसी जाति का *फ्यूमेरिया परवीफ्लोरा* उत्तरी भारत के मैदानों में प्रचुरता से होता है और पित्तपापड़ा नाम से प्रयुक्त होता है।

भाषावार नाम – संस्कृत –*पर्पट, क्षेत्रपर्पट, वरतिक्त;*

हिन्दी– *पित्त पापडा, शाहतरा, धनगजरा;* पंजाबी– *पापड़ा, शाहतरा;* बांग्ला –*बनसुलफा, शोतरा, पित्तपापड़ो;* गुजराती–*पित्तपापडो*; तमिल– *तुरु;* तेलुगु– *छोटा रशी* ; लैटिन– *फ्यूमेरिया परविफ्लोरा।*

औषधीय गुण

लघु, तिक्त, शीतल, कफपित्तशामक, क्षुधा वर्द्धक, कटु पौष्टिक, रक्तस्तम्भक, क्रिमिघ्न, यकृत उत्तेजक, रक्तशोधक, मूत्रल, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, दाहशामक तथा वमन, पाण्डु, मदाग्नि, गंडमाला, मूत्रकृच्छ्र तथा सभी चर्म रोगों में हितकर है।

औषधीय प्रयोग

अम्लपित्त तथा आमाशय व्रण इसके पंचांग का क्वाथ या शीत कषाय दिन में तीन बार 25 मिली. की मात्रा में देने से रोगी को रोग मुक्त करा देता है क्योंकि यह पित्त की उत्पत्ति को कम कर देता है।

250 मिली. पानी में इसके 10 ग्राम पंचांग को उबाल कर 60 मिली. रहने पर दिन में दो बार देने से *मूत्र कृच्छ्र तथा अजीर्ण* को ठीक करता है तथा यह कृमिघ्न, स्वेदजनन, और रेचक गुण दर्शाता है। इसी क्वाथ को दिन में तीन बार लेने से बल बढ़ता है तथा शरीर पुष्ट होता है।

खुजली, गंडमाला, तथा चर्म विकारों में उपरोक्त विधि से बनाया इसका क्वाथ या कषाय दिन में चार बार लेने से इन सभी रोगों को ठीक करता है परन्तु खट्टी चीजों तथा मिर्च से परहेज जरूरी है। इन बीमारियों में इसके बीज भी लाभकारी हैं।

तेज बुखार तथा मलेरिया बुखार में इसके कषाय का दिन में दो बार प्रयोग इन बुखारों की अचूक दवा है। हाथ पैरों की जलन तथा शरीरदाह में भी इसका प्रयोग शान्ति प्रदान करता है।

पाण्डु, शीतज्वर तथा रक्त विकार इसके क्वाथ या कषाय में 2 रत्ती शुंठी चूर्ण मिलाकर पिलाने से ये रोग शान्त होते हैं।

शुष्क एग्जिमा तथा खुजली में हल्दी के साथ इसको पीसकर रोगग्रस्त स्थान पर लेप लगाने से शुष्क एग्जिमा तथा खुजली ठीक होती है। साथ में क्वाथ भी पीने को देना चाहिए।

इसके 5 ग्राम यवकुट पंचांग को 3 ग्राम वायविडंग के साथ 200 मिली. पानी में उबाल चतुर्थांश शेष रहने पर प्रतिदिन रात्रि में देने से 4–5 दिनों में उदर कृमियों का नाश तथा रक्त का शोधन होता है।

फुलबहरी में फिटकरी, बोल, कलमीशोरा, कासीस, नील समभाग में मिला सिरके में पीस ग्रस्त स्थान पर लेप करने से लाभ होता है।

आपके अनुभव

जैसा हम समय–समय पर अपने पाठकों से अनुरोध करते रहे हैं, हम प्राथमिक स्वास्थ्य संबंधी आपके अनुभवों का विशेष स्वागत करते हैं। यदि आपने जीवनीय में उल्लिखित या अन्यथा प्राप्त जानकारी के आधार पर कुछ लाभकारी या हानिकारक अनुभव किए हैं तो हमें आपसे अपेक्षा है कि आप अपने अनुभवों को हमें अवश्य लिखें ताकि उनसे अन्य पाठक भी लाभ उठा सकें।

– संपादक मंडल

भृंगराज

पं.काशीनाथ गोपाल गोरे

इसे साधारणतया भंगरा कहते हैं। यह प्रायः वर्षा ऋतु में खेतों में और नम जमीन में पैदा होता है। इसका पौधा २५-३० सेंटीमीटर तक उंचा होता है और जमीन पर काफी फैलता है। नम जमीन में यह साल भर भी बना रहता है। इसके पत्ते बारीक और लम्बी बनावट के होते हैं। कुछ काले रंग के फूलवाले पौधे भी पाये जाते हैं, जो अधिक गुणकारी माने गये हैं।

भाषावार नाम : इसे संस्कृत में *भृंगराज, मार्कव;* हिन्दी में *भंगरा;* गुजराती में *भांगरो;* मराठी में *माका;* बंगला में *केसुटी, केसूरिया,* तमिल में *गरुगा* कहते हैं।

यह तिक्त, उष्ण, आंखों के लिए हितकारी, केशरंजक, रूक्ष, तीक्ष्ण, दांतों के लिए लाभदायक और सूजन, आम, आंत्रवृद्धि, शिरोरोग, नेत्ररोग, कफ, वायु, खांसी, दमा, कुष्ठ, कृमि, पांडु, हृदय रोग , त्वग्रोग, विष और खुजली का नाशक है।

औषधीय उपयोग

उपदंश व्रण (सिफिलिस) की शुद्धि हेतु भृंगराज के रस से धोना चाहिए।

आधाशीशी हो तो भृंगराज का रस और बकरी का दूध बराबर मात्रा में मिलाकर हल्का गरम कर नाक में डालें या भंगरे के रस में कालीमिर्च पीसकर माथे पर उसका लेप लगायें।

यदि नवजात शिशु के गले में **कफ का जमाव** हो और सांस के साथ घुर-घुर की आवाज हो तो भृंगराज के स्वरस की दो बूंद लेकर उसमें आठ बूंद शहद मिलायें और इस मिश्रण को शिशु को चटायें। इससे गले में जमा हुआ कफ निकल जाता है।

पीलिया में भंगरे के रस में कालीमिर्च ५ ग्राम का चूर्ण मिलाकर दही के साथ दिन में तीन बार दें।

बच्चों का पेट फूलने पर भृंगराज का स्वरस और घी मिलाकर दें।

सूजन के लिए भंगरे के रस में कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर खिलायें और उसी मिश्रण से सूजन के स्थान पर मालिश करें।

जले हुए स्थान का घाव ठीक होने के बाद उस स्थान पर भंगरे और तुलसी का रस दिन में तीन बार लगायें। इससे उस स्थान पर सफेद दाग नहीं रहेगा।

शरीर में मेद की अधिकता होने और मेद की गांठें पड़ने पर प्रतिदिन सोने से पूर्व भंगरे का स्वरस शरीर पर रगड़कर मलना चाहिए। लगातार सेवन से मेद की गांठें नष्ट हो जाती हैं और मेद में कमी आती है।

मुंह में छाले पड़ने पर भंगरे के पत्ते मुंह में रखकर चबाने से लाभ होता है।

अग्निमांद्य, मल निकल न रहा हो अथवा पांडुरोग हो तो भंगरे के सर्वांग का चूर्ण और त्रिफला चूर्ण समभाग लेकर शक्कर के साथ दें।.

स्वरभंग होने पर भंगरे का रस घी में डालकर गरम करें। रस समाप्त होने पर शेष घी का सेवन करें।

भंगरे को **केशरंजक** कहा गया है। अतः केशतैल बनाने में भंगरे के पत्तों का उपयोग किया जाता है। इससे बाल काले होते हैं और उनपर चमक आ जाती है। तेल के सेवन से आंखों को भी लाभ होता है।

बिच्छू द्वारा दंश होने पर भृंगराज के पत्ते बांधने से आराम होता है।

मवेशियों के घाव पर भृंगराज के पत्ते या जड़ों का लेप लगाने से लाभ होता है। यह कीटाणुनाशक औषधि है।

भंगरे के पत्ते चबाने से दांत भी मजबूत होते हैं।

पुनर्नवा

कु. पुष्पा असवाल, लखनऊ

वर्षा के मौसम में जगह-जगह पुनर्नवा जमीन पर फैली हुई देखने को मिलती है। वर्षा के मौसम में उगने के कारण इसे "वर्षाभू" कहते हैं। वैसे बोल-चाल की भाषा में आम आदमी इसे गदहपुरना नाम से जानता है। कहीं-कहीं इसे विषखपरा भी कहते हैं। पुनर्नवा की तीन जातियां होती हैं - सफेद, लाल व नीली, जिनमें अधिकतर सफेद व लाल जाति ही देखने को मिलती है। सफेद रंग वाली ज्यादा गुणकारी व लाभकारी होती है । सफेद पुनर्नवा की तुलना में लाल पुनर्नवा अधिक मिलती है। लाल पुनर्नवा की जड़ें जमीन में काफी गहरे धंसी हुई होती हैं इनको उखाड़ना कठिन होता है जबकि सफेद पुनर्नवा की जड़ें अधिक गहराई तक नहीं जाती जिससे वे आसानी से उखड़ जाती हैं। पुनर्नवा अधिकतर कंकरीली ऊसर व बिना जोती हुई जमीन पर स्वतः उग आती है। कड़ी धूप वाले स्थान पर जहां कोई अन्य वनस्पति आम तौर पर नहीं उगती पुनर्नवा के लिये उपयुक्त होती है। यह घास, कटेरी, मदार व धतूरे जैसी वनस्पतियों के साथ उत्पन्न होती है।

इस के पत्ते छोटे-छोटे, गूदेदार व बिना जोड़े के (एक साथ दो नही) तने से लगे होते हैं। लाल रंग का फूल गुच्छों में निकलता है। वर्षा खत्म होते ही पौधा सूखने लगता है परन्तु जड़ हरी बनी रहती है और पुनः वर्षा आने के समय नये पौधे को पैदा करती है। चिकित्सा में जड़ का प्रयोग किया जाता है।

भाषावार नामः पंजाबी - *विषखपरा,* बंग्लाः *गादापुण्या ;* मराठी : *घेटुली, पांढरी;* गुजराती- *मोटो साटोगे,* लैटिन -बोएरहाविआ डीफ्यूसा। तमिल- *सुकुएट्टि;* तेलुगु- *आतातासायिदि।*

लाल पुनर्नवा

यह स्वाद में चरपरी (तिक्त) है और इसकी तासीर ठंडी है। यह आसानी से पचने वाली, वात को बढ़ाने वाली, दस्तावर, सूजन दूर करने वाली और खून की कमी में लाभकारी है।

सफेद पुनर्नवा

इसका स्वाद चरपरा व तासीर गर्म है। यह दस्तावर, हृदय के लिये लाभकारी, सूजन को हटाने वाली और खून की कमी में उपयोगी है। कुछ लोग इसका प्रयोग विष के असर को दूर करने में करते हैं।

रोगों में प्रयोग

सूजन : सूजन दो प्रकार की होती है। एक सूजन तो चोट लगने, मोच आने आदि से होती है। यह सूजन शरीर के किसी एक भाग में होती है। इसके लक्षण हैं- दर्द, लालिमा व सूजन इसमें पुनर्नवा लाभ नहीं करती है। दूसरी प्रकार की सूजन अधिकतर पैरों, आंखों, चेहरे पर हाथों या पूरे शरीर में होती है। दबाने से सूजन वाले स्थान पर दर्द नहीं होता व जब गड्ढा बन जाता है जो कुछ समय बाद सामान्य हो जाता है।यह सूजन **निम्न कारणों** से हो सकती हैः-

- *खून की कमी*
- *गुर्दों की खराबी*
- *हृदय में विकार*

इन कारणों से **शरीर में उपस्थित जल का रासायनिक संतुलन** बिगड़ जाता है और उससे शरीर का जल, मूत्र द्वारा बाहर नहीं निकल पाता और धीरे

शेष पृष्ठ 35 पर - -

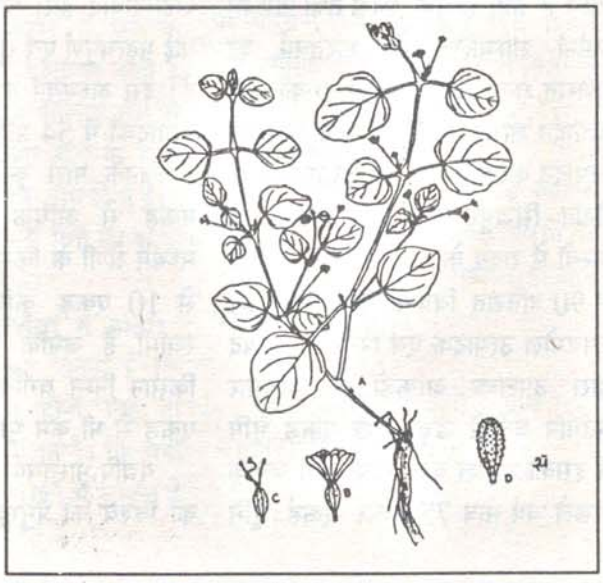

इसबगोल आर्थिक एवं औषधीय महत्व

डा. विनय कुमार शुक्ल एवं डा. नंदूमल खन्ना

भारतवर्ष को प्रकृति ने औषधोपयोगी पादपों की प्रचुर मात्रा का बहुमूल्य कोष प्रदान किया है जिसके कारण यह देश वानस्पतिक रसायनों का उत्पादन करने वाले विश्व के प्रमुख निर्यातकों में आता है। इन्हीं महत्वपूर्ण औषधीय पदार्थों में से एक इसपगोल अथवा इसबगोल भी है जो सीलियम अथवा प्लांटेगो–ओवेटा नामक पौधे से प्राप्त होता है तथा जिसका वर्तमान में विश्व का सबसे बडा निर्यातक राष्ट्र भारत है। इस औषधीय पदार्थ का सबसे बडा क्रेता संयुक्त राज्य अमेरिका है जो समस्त उत्पादन का लगभग 70 प्रतिशत भाग खरीदता है। अन्य देश जो भारत से इस उत्पाद का क्रय करते हैं उनमें इंग्लैंड, फ्रांस तथा पश्चिम जर्मनी सम्मिलित हैं। भारतवर्ष का गुजरात राज्य देश के सीलियम की कुल उत्पादन क्षमता के 70 प्रतिशत भाग का उत्पादन करता है। उत्तरी गुजरात राज्य में स्थित सिद्धपुर तथा ऊंझा नामक दो कस्बों में राज्य के कुल उत्पादन का 80 से 90 प्रतिशत विक्रय किया जाता है। इसबगोल उत्पादक एवं निर्यातक परिषद द्वारा उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्तमान वर्ष में डेढ़ लाख एकड़ भूमि में इसकी फसल को उगाया गया जबकि पिछले वर्ष मात्र 75 हज़ार एकड भूमि में ही इसकी खेती की गयी थी। गुजरात के अलावा राजस्थान तथा इसके समीपवर्ती अन्य क्षेत्रों में भी इसबगोल की खेती थोड़ी मात्रा में की जाती है। इसको रेतीली मिट्टी में उगाया जाता है तथा इसमें सिंचाई के लिए अधिक जल की आवश्यकता भी नहीं पड़ती हैं।

उत्पादन की दृष्टि से वर्तमान वर्ष का उत्पादन गत वर्ष की तुलना में दुगना, लगभग 50 हजार टन रहा परन्तु निर्यात की मात्रा जो पिछले वर्ष 13,300 टन थी, घटकर वर्तमान वर्ष में 10,000 टन रह गयी। "नाफेड" तथा "गुजरात राज्य सहकारी विक्रेता समिति" ने हाल ही में निर्यात कम करने का निर्णय लिया है। इस संदर्भ में भारतीय प्रबंधन संस्थान अहमदाबाद द्वारा किये गये अध्ययन से कई महत्वपूर्ण एवं रोचक तथ्य स्पष्ट हुये हैं। इस अध्ययन के अनुसार इसबगोल उत्पादकों में 54 प्रतिशत बड़े किसान हैं जिनके पास कृषि योग्य भूमि 10 एकड़ से अधिक है, 20 प्रतिशत मध्यम श्रेणी के किसान हैं जो लगभग 5 से 10 एकड़ कृषि योग्य भूमि के स्वामी हैं जबकि मात्र 18 प्रतिशत किसान निम्न वर्गीय हैं जिनके पास 5 एकड़ से भी कम भूमि है।

यद्यपि भारतवर्ष वर्तमान में इसबगोल का विश्व का प्रमुख पूर्तिकारक है तथा इस क्षेत्र में अपना एकाधिकार बनाये हुये है फिर भी यदि देश अपनी विक्रय नीतियों में समुचित सुधार नहीं करता है तो आगामी वर्षों में इसकी निर्यात क्षमता को आघात पहुंच सकता है। इसका कारण यह है कि आने वाले वर्षों में इसके क्रेता राष्ट्र इस फसल के किसी समुचित विकल्प अथवा खेती करने लगेंगे और इसबगोल की खेती को आस्ट्रेलिया, चीन, तथा ब्राजील में उत्साहजनक सफलता मिली है। इसके फलस्वरूप भारत का इस उत्पाद पर एकाधिकार समाप्त हो सकता है।

वर्तमान समय में भारत में स्थापित कुछ बहुराष्ट्रीय निगमों ने इसबगोल को अपने मूल प्रतिष्ठानों में तैयार करने की योजना बनायी है। तथा इनमें से एक संगठन ने तो प्रतिष्ठान के भावी विकास कार्यक्रम की वरीयता सूची में इसबगोल की भूसी के उत्पादन मात्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व इसबगोल के बीजों का भारतवर्ष से निर्यात लगभग 20 करोड़ रुपये का था पर इसकी विदेशों इसकी मांग भी लगातार बढ़ती जा रही है। परन्तु दुर्भाग्यवश किसी भी भारतीय औषधि निर्माता द्वारा खाने योग्य इसबगोल के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। अतः इस महत्वपूर्ण पादप–औषधि की

निर्यात क्षमता तथा विदेशी मुद्रा लाभ को ध्यान में रखकर लखनऊ स्थित "केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान" में एक अत्यन्त सरल विधि विकसित की गई जिसके द्वारा इसबगोल की भूसी को उपयुक्त नुस्खे में विकसित किया गया जिसके उत्साहवर्धक परिणाम मिले।

इसबगोल के बीजों के औषधीय तथा व्यापारिक मूल्य का आकलन उनमें उपस्थित म्यूसिलेज (भूसी) की मात्रा पर निर्भर करता है। इसके शुष्क बीजों तथा भूसी का प्रयोग त्वचा को कोमल बनाता है मानसिक शान्ति देता है। तथा इसका प्रयोग रेचक औषधियों में और पाचन तन्त्र के विकार के कारण उत्पन्न अतिसार एवं पेचिश आदि रोगों के उपचार में किया जाता है। इस औषधि का प्रभाव हानिकारक पार्श्व प्रभावों से पूर्णतः मुक्त है। इसमें नियमित रुप से औषधि लेने को बाध्य करने वाला दोष भी नहीं है। यह औषधि कुछ स्त्री रोगों जैसे अधिक रक्तस्राव तथा अनियमित मासिक धर्म की दशा में भी बहुत उपयोगी है।

भारत में इस औषधि की भूसी का सीधा प्रयोग किया जाता रहा है। रेचक औषधि के रुप में प्रयोग इसमें शर्करा, सोडियम बाइकार्बोनेट (खाने वाला सोडा) सिट्रिक अम्ल तथा सुगंधित पदार्थ मिलाये जाते हैं जिससे यह खाने योग्य स्वादिष्ट रेचक औषधि के रुप में प्रयुक्त होता है तथा इसका यह प्रयोग अमेरिका, यूरोपीय तथा मध्यपूर्व एशिया के देशों में लोकप्रिय भी है। इसके अतिरिक्त इसबगोल रक्त में उपस्थित कोलेस्टेराल की उच्च मात्रा (जो हृदय रोग का पुमुख कारण है) को कम करने में उपयोगी सिद्ध हुआ है। यही कारण है कि पश्चिम देशों के निवासी इसे प्रातःकालीन नाश्ते में लिये जाने वाले भोज्य पदार्थों में मिला देते हैं ताकि इसके प्रभाव से उच्च कोलेस्टेराल से संबंधित विकारों से बचा जा सके।

पृष्ठ 33 का शेष - पुनर्नवा

धीरे हाथ और पैरों में जमा होने लगता है। यदि समय पर योग्य चिकित्सक का इलाज शुरू हो जाता है तो रोग बढ़ने नहीं पाता, नहीं तो बाद में इसके अधिक बढ़ने से पूरे शरीर में सूजन व जलोदर (पेट में पानी भरना) आदि गम्भीर रोग हो जाते हैं जो चिकित्सा से शीघ्र अच्छे नहीं हो पाते।

दूसरे प्रकार की सूजन में पुनर्नवा की जड़ के चूर्ण का काढ़ा लेना शुरू कर देना चाहिए। इससे सूजन का पानी पेशाब के द्वारा शरीर के बाहर निकल जाता है।

वैज्ञानिकों ने पुनर्नवा पर शोध करके यह पाया कि जब गुर्दे काम करना बंद कर देते हैं तो मूत्र निर्माण प्रक्रिया रुक जाती है। ऐसी स्थिति में गुर्दो के विकार में पुनर्नवा की जड़ का प्रयोग लाभकारी है। इसके अधिक दिन तक लेते रहने से गुर्दे में स्थित मूत्र बनाने वाली रचनायें जो नष्ट हो गई थी या उन्हों नें काम करना बन्द कर दिया था वे पुनः सक्रिय हो गई। गुर्दे की मृत कोशिकाओं का पुनः निर्माण भी संभव है। शरीर की निर्माण प्रक्रिया में साधारणतया मदद करने की पुनः नवीन करने की क्षमता के कारण ही इसका नाम पुनर्नवा है।

पीलिया

पीलिया में लाल की अपेक्षा सफेद पुनर्नवा अधिक लाभकारी है क्योंकि सफेद पुनर्नवा की जड़ दस्तावर होती है और इस गुण के कारण पीलिया रोग में शरीर में बढ़ा हुआ पित्त मल के साथ बाहर निकल जाता है और लाभ होता है।

पीलिया में पुनर्नवा के पत्तों का शाक बनाकर भी प्रयोग करते हैं।

पुनर्नवा व पत्थरचट्टा में अंतरः

अधिकतर लोगों का मानना है कि पुनर्नवा व पत्थरचट्टा दोनों एक ही वनौषधि के नाम है जो गलत है। यह सही है कि दोनों का रंग रूप देखने में समाल है लेकिन दोनों में अंतर है।

पत्थरचट्टा जिस स्थान पर उगती है उस स्थान पर लगभग एक हाथ के घेरे में फैली रहती है इसके पत्ते पुनर्नवा से बड़े होते हैं। ये अधिकतर जोती हुयी जमीन पर खर पतवार के रूप में पैदा होता है।

– पुनर्नवा की जड़ें काफी गहरे तक घनी रहती व काफी लम्बी होती हैं।

– पुनर्नवा का तना मोड़ने तोड़ने पर आसानी से अलग नहीं होता है। इसमें रेशे अधिक होते हैं। पत्थरचट्टा आसानी से टूटकर अलग हो जाता है।

विशेष

– सफेद पुनर्नवा की जड़ अधिक दस्तावर होती है अतः गर्भवती औरतों को नहीं देना चाहिए अन्यथा गर्भपात हो जाने की संभावना रहती है।

मात्रा

मूल जड़ का चूर्ण ३ से ६ ग्राम
जड़ का रस २० से ३० मिली.

हृदय के लिये लाभकारी - घी

वैद्य उमेश चन्द्र शर्मा लखनऊ

घी भारतीय भोजन का एक आवश्यक अंग है। बिना घी का भोजन अधूरा व स्वादरहित माना जाता है। आज भी बुजुर्ग लोग नये उम्र के लोगों को घी खाने की राय देते हैं। हमारे यहां विद्यार्थियों को घी खिलाने की परम्परा है। जब कोई नौकरी के उद्देश्य से गांव से शहर को जाता है तो वह अपने साथ घी लेता जाता है। प्रसूता स्त्री को घी के लड्डू खिलाने की भी परम्परा है। इन्हीं मान्यताओं के कारण, शहरों व कस्बों में, जो हलवाई मिठाइयां व अन्य पकवान घी में बनाते हैं उन्हीं की दुकानों पर सबसे ज्यादा ग्राहकों की भीड़ जमा होती है।

लेकिन पैसा कमाने के उद्देश्य से व्यापारियों ने रासायनिक तत्वों, व जानवरों की चर्बी से वानस्पतिक घी, जैसे डालडा आदि बनाकर बाजार में विज्ञापन के माध्यम से खूब प्रचारित किया कि देशी घी के मुकाबले में वानस्पतिक घी शरीर के लिये अधिक लाभकारी है। जिसके कारण शुद्ध देशी घी के स्थान पर कृत्रिम घी ने अपना स्थान जमा लिया, व इसका खाने में भरपूर उपयोग होने लगा।

इसी समय चिकित्सा जगत के कुछ वैज्ञानिकों ने यह कहना शुरू कर दिया कि शुद्ध घी खाने से ब्लड प्रेशर आदि हृदय के रोग पैदा होते हैं जिसके कारण लोग शुद्ध घी खाने से डरने लगे, लेकिन यह डर सिर्फ पढ़े- लिखे लोगों व शहर के एक खास वर्ग तक ही सीमित है, जबकि ग्रामीणों ने अपनी परम्परा को नहीं छोड़ा है व भोजन में शुद्ध घी का प्रयोग जारी रखा है।

कुछ वर्षों के बाद देखा गया कि जो लोग शुद्ध घी के स्थान पर वानस्पतिक घी (डालडा आदि) का खाने में प्रयोग करते थे वे ही ब्लड प्रेशर व हृदय के रोगों के अधिक शिकार हुए जबकि शुद्ध घी खाने वाले ग्रामीण व मध्यम परिवार के सदस्यों में न तो ब्लड प्रेशर की शिकायत थी और न ही उनमें कोई हृदय रोगी था।

ब्लड प्रेशर व हृदय रोग होने का कारण शुद्ध घी नहीं है अपितु अन्य कारण हैं जो निम्न हैं :-

उचित मात्रा में शारीरिक व्यायाम न करना,
सिगरेट पीना,
अत्यधिक मदपान करना,
अत्यधिक चिंता करना और
भोजन का सम्यक् पाचन न होना।

दूध को आंच पर गर्म करके पकाया जाता है। फिर इस पके दूध में थोड़ा सा दही (जामन)डालकर दूध को जमने के लिये रातभर रख देते हैं जिससे सुबह वह दही बन जाता है। फिर इस दही को खूब मथा जाता है। मथने की प्रक्रिया में दही में पानी मिलाकर उसे पतला करते हैं। दही को मथने से उसके दो भाग हो जाते हैं - मक्खन व मट्ठा । जब मक्खन को आंच पर रखकर धीरे - धीरे गर्म करते हैं तब जाकर घी का निर्माण होता है। दूध से घी बनने की जो उपर्युक्त प्रक्रिया है उसके कारण घी के गुणों में लाभकारी प्रभाव आ जाता है।

घी के गुण

घी स्वाद को बढ़ाने वाला, आंखों के लिये लाभकर, भूख बढ़ाने वाला, ठंडी तासीर वाला, चेहरे पर चमक पैदा करने वाला, आवाज साफ करने वाला, स्मरण शक्ति बढ़ाने के कारण विद्यार्थियों के लिये लाभकर, आयु को बढ़ाने वाला, देर से पचने वाला, ताकत देने वाला, कफ पैदा करने वाला, विष को दूर करने घाव भरने में लाभकारी, खून की खराबी को दूर करने वाला व बढ़े हुये पित्त को कम करने वाला होता है।

घी का सेवन कौन न करे

स्थूल शरीर वाले
टी. बी. के रोगी
जुकाम व सर्दी में
जोड़ों के दर्द में
कमजोर पाचन शक्ति वाले और बुखार से पीड़ित।

चावल

वैद्य सुल्तान अली खां, लखनऊ

संसार के खाद्यान्नों में चावल एक मुख्य खाद्यान्न है। लगभग सारे भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है और यह बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, आसाम और मद्रास आदि प्रान्तों में वहां के लोगों का मुख्य खाद्यान्न है। धान नाम के पौधे के बीजों के ऊपर से छिलका (भूसी) उतार देने पर जो बीज का पौष्टिक भाग बचता है उसे ही चावल कहते हैं।

विभिन्न भाषाओं में चावल के निम्न नाम प्रचलित हैं : हिन्दी– *चावल* ; संस्कृत– *तन्दुल* ; बंगला– *चाल या ओल* ; गुजराती– *चोखा–डांगर*; मराठी– *तांदुल*; सिंधी– *चावर* ; लैटिन –*अराइजा साटाइवा।*

चावल के प्रकार

जंगली चावल - इन्हें तिन्नी चावल भी कहते हैं। यह बिना बीज बोये या कृषि कार्य किये अपने आप बड़े–बड़े तालाबों के किनारे स्वयं उगता है। यह तिन्नी चावल साठी चावल की भांति गुणकारी, शीघ्र पचने वाला, हल्का और कफ–पित्त शामक होता है । इसका प्रयोग लोग व्रत– उपवास के समय खाने के लिए करते हैं। इसके ऊपर गेरुए रंग की "कन" की एक परत चढ़ी रहती है। इसे पकाते समय धोकर नष्ट नहीं करना चाहिये।

जल्दी उगने वाले चावल

६० दिन में साठी चावल की फसल तैयार हो जाती है, जो अगस्त मास के मध्य तक पककर तैयार हो जाती हे। इस का वर्णन पिछले अंक में किया जा चुका है।

चावल की कुछ किस्में ३–४ महीने में पककर तैयार हो जाती हैं। इनमें संकर प्रजाति की धान की विभिन्न किस्में भी आती हैं। साधारण भाषा में इन्हें मोटा चावल कहते हैं। कम समय में पकने वाली जातियों में भी कुछ चावल औसत दर्जे के अच्छे चावल भी होते हैं जैसे हंसराज, बिलासपुरी आदि। परन्तु संकर नस्ल के ज्यादातर चावल हीन गुण वाले होते हैं।

बाजार में उपलब्ध अधिकांश चावल इसी श्रेणी का मोटा चावल (महीन खुशबूदार चावल को छोड़कर) होता है। धान की अच्छी उपज काली मिट्टी या दोमट मिट्टी वाली भूमि में होती है।

देर से पकने वाली धान की जातियां

इस जाति के धान कुछ विलम्ब से उगाये जाते हैं और काफी देर से अक्टूबर नवम्बर तक पकते हैं जब कि रबी की फसल की बोवाई आरम्भ होने लगती है।

चावल की प्रकृति

साधारणतया चावल ठंडा और खुश्क (रूक्ष) होता है।

चावल का संगठन – चावल में मुख्य रुप से कार्बोहाइड्रेट होता है थोड़ी मात्रा में प्रोटीन तथा कुछ खनिज भी होते हैं। लाल चावलों की ऊपरी परत (कन) में विटामिन– बी अच्छी मात्रा में पाया जाता है।

चावलों के सामान्य गुण

सभी चावल उत्तम पित्त शामक कफवर्धक तथा किंचित् कफ तथा वात प्रकोपक होते हैं। चावल कार्बोहाइड्रेट बहुल व कफवर्धक होने के कारण पौष्टिक व शक्तिदायक आहार है। शीघ्र पचता है। परन्तु मोटापा तथा कुछ विबंध पैदा करता है। यह पेट के आकार को बढ़ाता है।

महीन चावल (नया)

मधुर रस वाला, शीतवीर्य (ठंडा) चिकना, हल्का, बलदायक, शरीर को बढ़ाने वाला शुक्रवर्धक, मूत्रवर्धक, गर्मी (पित्त) को शान्त करने वाला, तथा कफ व वात को बढ़ाने एवं कुपित करने वाला होता है।

पुराने महीने चावल

शुक्रवर्धक, मूत्र को अधिक लाने वाला, फलदायक, शरीर के वर्ण को

निखारने वाला, हृदय के लिए हितकर, ज्वर नाशक, तीनों दोषों वात पित्त और कफ को शान्त करने वाला और भूख बढ़ाने वाला होता है। पुराने चावल का मतलब कई साल पुराने चावल से होता है। पुराने चावल को भी अधिक मात्रा में लम्बे समय तक लगातार खाने से यह भी वात व कफ को बढ़ाने के साथ-साथ प्रकुपित भी कर सकता है।

चावल किन्हें पथ्य है ? पित्तज (उष्ण) प्रकृति वालों, पित्तज रोगों से पीड़ित तथा युवा लोगों को इसका प्रयोग इच्छानुसार करना चाहिये।

चावल किन्हें अपथ्य है ? कफज प्रकृति वाले लोगों को तथा कफज रोगों से पीड़ित - मोटापा, प्रमेह, श्लीपद शोथ आदि के रोगियों को इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। कफज प्रकृति के बच्चों को भी इसका प्रयोग नहीं या कम चाहिये। जिनका कोलेस्टेराल बढ़ा हुआ हो उन्हें वातज तथा वात-कफज प्रकृति के लोगों को चावल का प्रयोग नहीं या युक्तिपूर्वक सीमित प्रयोग करना चाहिए। वृद्धों को भी चावल का यदा-कदा ही सेवन करना चाहिये।

चावल के प्रयोग की विधियां

चावल को आमतौर पर पानी में उबालकर पकाकर सब्जी या दालों आदि के साथ खाते हैं। इस विधि में चावल अधिक वात एवं कफवर्धक होता है।

चावल को दालों के साथ मिलाकर पकाकर खिचड़ी के रूप में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के चावल के प्रयोग से उसके गुण दाल के अनुरूप परिवर्तित हो जाते हैं और उनकी कफवर्धकता कम होती है।

चावलों के साथ मसाले आलू आदि डालकर चिकनाई युक्त तहरी के रूप में चावल का प्रयोग करने से चिकनाई के कारण चावल कम वातवर्द्धक हो जाता है, व उसकी पौष्टिकता बढ़ जाती है।

चावल का पुलाव या बिरयानी :- सौंफ, कालीमिर्च, अदरक, इलायची, धनियां, जावित्री, लौंग, जाफरान आदि की पोटली बनाकर, मांस के ताजे टुकड़े व पानी डालकर पकाया जाता है। मांस के गल जाने पर मांस के टुकडे अलग कर लिये जाते हैं। मसाले की पोटली से रस निचोड़कर अलग कर दी जाती है। यह मांस रस अलग रख लिया जाता है। अब मांस रस को लौंग, इलायची के साथ घी में बघार दिया जाता है। तथा कुछ समय पहले भिगोये हुए पुराने उत्तम महीन चावलों और मांस के तले टुकड़ों को डालकर चावलों को पकाया जाता है। घी आवश्यकता और इच्छानुसार या चावल की किस्म या पुरानेपन के अनुसार डाला जाता है। इस विधि से चावल के सारे दुर्गुण दूर हो जाते हैं और एक पौष्टिक आहार बन जाता है परन्तु कफ प्रकृति वालों को इसे नहीं खाना चाहिये।

मटर पुलाव :- इसमें हरे मटर को घी में तलकर और मसालों की पोटली से रस निकालकर उसमें चावल व मटर डालकर पका लिया जाता है।

रोगी को पथ्य के रूप में मांड, पेया, विलेपी (लपसी), यवागू (खिचड़ी) आदि के रूप में चावल प्रयोग कराया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के औषध द्रव्य आवश्यकतानुसार मिलाकर या उनके रस से इन्हें तैयार किया जाता है।

मांड़ का प्रयोग :- चावल का धोवन अथवा मांड़ सूजाक या रक्तप्रदर में तथा पित्तशामक औषधियों के साथ अनुपान रूप में प्रयोग होता है। साठी चावल का मांड़ देने से बच्चे रात में बिस्तर पर पेशाब करना त्याग देते हैं। शिशुओं का दूध छुड़ाने के लिये पहले थोडा साठी चावल का मांड़ देना चाहिये। अतिसार में भी मांड़ देने से बच्चों को लाभ होता है।

चावल की खील (लाई) :- ज्वर व पित्तशामक होती है। अतः ज्वर व प्यास बुझाने हेतु दी जाती है।

विज्ञान पहेली एक -निर्णय
कोई सर्वशुद्ध हल नहीं
दो अशुद्धियों वाले दो विजेताः
(१) वैद्य विश्वनाथ जोशी
श्री राम धर्मार्थ औषधालय
तुमसर - ४४१९१२
(२) तृप्ति पी. व्यास, द्वारा डा.डी. व्यास
आयुर्वेद हास्पिटल
स्टेशन रोड, सूरत - ३९५००३

अन्य पुरस्कार (५ अशुद्धि)
(३) श्री सतीश डी. लाकरे द्वारा डा.टी.डी. गुप्ता
होटल टूरिस्ट के पास
हमालपुरा, अमरावती - ४४६०३

शब्द कोश

इस अंक में प्रस्तुत कुछ कठिन शब्दों के प्रासंगिक अर्थ यहां दिए जाते है ताकि पाठकों को कठिनाई न हो जिन शब्दों के अर्थ पिछले अंकों में दिए हैं, वे कई बार दोबारा नहीं दिए जाते।

अर्बुद – सूजन, ट्यूमर, किसी अंग में उत्पन्न ऐसी वृद्धि जो कड़ी हो गई हो, गांठ।

अश्मरी – पथरी को नष्ट करने वाली औषधि।

ऋतुसंधि काल – जब एक ऋतु की समाप्ति होकर दूसरी ऋतु का आरंभ हो रहा हो तो उस काल को ऋतुसंधि काल कहते हैं। ग्रीष्म–वर्षा, शरद–शिशिर, शिशिर–वसन्त इन सन्धि कालों में आरोग्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है।

एरंड स्नेह – रेंडी का तेल

गंडमाला – गले की ग्रन्थियों में विकार और सूजन। गांठें उत्पन्न होना।

त्वक् विकार – त्वचा (चमड़ी) में उत्पन्न कष्ट और रोग।

दुष्ट व्रण – ऐसा घाव जो शीघ्र ठीक न हो रहा हो।

धातुपाक – शरीर में आहार आदि से धातुओं का निर्माण।

पार्श्व प्रभाव – किसी औषधि के सीधे प्रभाव के अलावा होने वाले अन्य हानिकारक प्रभाव (साइड इफेक्ट)।

पांडुता – पीलापन। खून की कमी से शरीर और चेहरे पर पांडुता आ जाती है।

प्रमेह – इस रोग के लक्षण हैं मूत्र अधिक और मिलावट युक्त होना। मधुमेह यानी शक्कर की बीमारी इसी का एक प्रकार है।

प्रवाहिका – आंव, दस्त। इसमें मलसहित कफ निकलता है।

मूत्रकृच्छ – एक रोग, जिसमें पेशाब होने में कष्ट होता है।

रसना – जीभ, वह इन्द्रिय जिससे मनुष्य मधुर आदि छः रसों का स्वाद लेता है।

वर्ति – बत्ती (रुई की बत्ती)।

वात व्याधि – वात दोष के विकार से उत्पन्न होने वाला रोग।

विपादिका – बिवाई, पादस्फोट।

पृष्ठ 28 का शेष – सुदाब

है। सिरके के साथ मिलाकर लेप करने कम करता है। सुदाब की पत्तियों का काढ़ा **गृध्रसी (सियाटिका)** में उपयोगी है। शहद के साथ इसका लेप **जोड़ों के** दर्द में भी उपकार करता है। **पक्षाघात और नक्सीर** की प्रारंभिक अवस्था में इसका काढ़ा बहुत लाभ करता है। सुदाब की ताजा पत्तियों के स्वरस में शहद मिलाकर आंख में टपकाने से आंख की ज्योति बढ़ती है।

सिरदर्द और सांस की तकलीफ में ताजा सुदाब तथा सोये का काढ़ा उपयोगी है। यह शुक्र को सुखाकर **कामेच्छा** को कम करता है। उदरशूल में इसकी पत्तियों का एनीमा उपयोगी है। बर्गे सुदाब को शहद के साथ मिलाकर लेप करने से गुदव्रण ठीक होता है। गुर्दे की शीतलता में, पीठ के दर्द में सदाब का तेल ज्यादा उपयोगी साबित होता है। कुत्ते के काटने पर बर्गे सुदाब का काढ़ा भी उपयोगी है। जड़ और पत्तियों के काढ़े में शराब मिलाकर देने से काढ़ा और भी प्रभावी हो उठता है।

अपस्मार (हिस्टीरिया) के इलाज में भी सदाब उपयोगी है। **गर्भिणियों के लिये यह अत्यंत अहितकर और गर्भसाव कर है।**

(अंग्रेजी लेख से रुपान्तरित)

पृष्ठ 25 का शेष - गोखरू

अपेक्षा मूत्रल अधिक है। बड़े में पोटेशियम की मात्रा कम होने के कारण वृक्क विकारों में अधिक प्रशस्त है तथा इसका क्वाथ शिलाजीत के साथ मूत्र की अम्लीयता तथा मूत्र की असंयमता में प्रयुक्त होता है। इसका चूर्ण घी और दूध के साथ लेने से ताकत तथा यौन शक्ति बढ़ाता है। यह श्वास कास में भी अति उपयोगी है। जबकि छोटा गोखरू मूत्र-कृच्छ, सुजाक, अश्मरी, बस्तिरोग, तथा आम वात में अधिक गुणकारी है।

प्रयोग : वेदना युक्त बहुमूत्रता में छोटे गोखरू के क्वाथ में पोटाशियम कार्बोनेट मिलाकर लेने से लाभ होता है। **अश्मरी, सुजाक, आमवात तथा मूत्र कृच्छ्रता** में प्रसिद्ध गोक्षुरादि गुग्गुलु इन रोगों में अति लाभदायक है। इसके मुख्य द्रव्यों में गोखरू, गुग्गुलु, त्रिकटु (पिप्पली, सोंठ, कालीमिर्च) तथा त्रिफला (हरड़ का छिलका, बहेडे का छिलका तथा आंवले का छिलका) है।

समान मात्रा में गोखरू तथा शतावरी के चूर्ण को 5 ग्राम मात्रा में प्रातः निहार मुंह तथा रात्रि सोते समय गरम दूध से लेने पर यह सभी शुक्रज व्याधियों में प्रशस्त है। और शरीर में ताकत तथा स्फूर्ति उत्पन्न करता है।

सुजाक तथा बस्तिरोगों में गोखरू 4 भाग, हरड़ 3 भाग तथा चांगेरी 3 भाग सूक्ष्म चूर्ण कर 3 ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार साधारण जल के साथ लेने से आशातीत लाभ होता है।

वृक्कशोथ तथा प्रदाह में इसके 15 ग्राम पंचांग के क्वाथ में 2 रत्ती शिलाजीत तथा एक बड़ा चम्मच शहद मिलाकर प्रातः सायं लेने से लाभ होता है।

नपुसंकता बड़े गोखरू तथा काले तिल को समान भाग में कूटकर इसकी 5 ग्राम मात्रा सुबह और रात्रि दोनों समय बकरी के गरम दूध में शहद मिलाकर लेने से लाभ होता है।

अश्मरी में बड़ा गोखरू 5 ग्राम तथा मकई के 3 ग्राम बालों का क्वाथ दिन में दो बार सुबह-रात्रि लेने से पथरी निकल जाती है।

आमवात में इसके पत्तों का चूर्ण 5 ग्राम सुबह शाम गरम दूध के साथ लेने से लाभ होता है।

10 ग्राम बड़े गोखरू 10 ग्राम का शीत कषाय नित्य प्रातः लेने से **स्वप्नदोष तथा नपुंसकता** निर्मूल हो जाती है।

पृष्ठ 23 का शेष - कफज प्रकृति

की अपेक्षा असमय में ही सफेद नहीं पड़ते व इनमें गंजापन भी कम देखने को मिलता है।

- इस प्रकृति वाले व्यक्ति को रोग देर से होते हैं परन्तु व्यक्ति बीमारी का कष्ट अधिक दिनों तक झेलता है।
- इनकी मित्रता स्थाई होती है। एक बार दोस्ती कर लेने पर देर तक निभाते हैं शीघ्र दोस्ती का संबंध खत्म नहीं करते।
- मीठे, नमकीन, खट्टे रसों वाले पदार्थ, घी-तेल, दूध, गुड़ व खोये से बने पदार्थ पौष्टिक गरिष्ठ भोजन अधिक करने अथवा बसन्त ऋतु (16 मार्च-15 मई) में स्वाभाविक रूप से, कफज प्रकृति वाले व्यक्तियों को खांसी, सांस की बीमारी, जुकाम, सिर दर्द, अपच, खुजली आदि रोग होने की संभावना होती है अतः इन लोगों को ठंडी तासीर के व मीठे आहार कम लेने चाहिये।
- कफज प्रकृति के लोग सात्विक होते है। ये लोग अपने से बडों तथा माननीय व्यक्तियों का आदर सम्मान करते हैं। ये लोग ईश्वर में आस्था रखने वाले होते हैं।

कुछ सुझाव

- इस प्रकृति के व्यक्तियों को अपच की शिकायत होने पर तुरंत उपचार करना चाहिये व हल्का, सुपाच्य व गरम तासीर वाले खाद्य पदार्थ लेना आरंभ कर देना चाहिये।
- हल्दी, हींग, लहसुन, जीरा, अजवायन, कालीमिर्च, अदरक, सौंफ, धनिया आदि मसालों का प्रयोग कम करें।
- शहद, जौ, कोदों, असगन्ध, शतावर, पत्ते वाले शाक, दाले (उड़द को छोड़कर) प्रयोग करें। रात व सुबह में दूध का प्रयोग कम करें।
- कफज प्रकृति के व्यक्तियों को दिन में नहीं सोना चाहिए क्योंकि इससे उन्हें मधुमेह व हृदय रोग पैदा होने की संभावना होती है।
- क्रीम, मक्खन, घी व मीठे खाद्य पदार्थ जैसे- शक्कर, गुड़, खोया, चावल, केला, सेब आदि का कम सेवन करें।

रस

पं काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

रस शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। जल, काढ़ा, स्वरस, मांस- रस, पसन्द, पारा आदि इसके अर्थ हैं। रस शब्द सामान्य का अर्थ बहने वाला है। इस प्रकार यह द्रव का पर्यायवाची भी है। परन्तु आयुर्वेद और स्वास्थ्य की दृष्टि से रस शब्द विशिष्ट अर्थ का बोधक है। इसके भी दो प्रकार हैं स्वाद और धातु।

स्वादेन्द्रिय अर्थात् जीभ से जिसका ज्ञान होता है, उस स्वाद को भी रस कहते हैं। आयुर्वेद में इसके निम्न छः प्रकार (षट्रस) बताये गये हैं। :-

मधुर (मीठा) , अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), तिक्त (तीता) ,कटु (कडुआ), कषाय (कसैला)।

उपरोक्त षड़रस पंचमहाभूतों से उत्पन्न होते हैं। मधुर रस पृथ्वी और जल से, अम्ल रस तेज और पृथ्वी से, लवण रस जल और तेज से, तिक्त रस वायु और आकाश से, कटु रस तेज और वायु से तथा कषाय रस वायु और पृथ्वी से उत्पन्न होता हैं।

मधुर रस : मधुर रस सुस्वादु होता है। इसमें चिकनाई- सी उत्पन्न होती है। यह शरीर, मन तथा इन्द्रियों को आनन्दित करता है। इसका विपाक मधुर होता है। मधुर रस शीतवीर्य, स्निग्ध और गुरु होता है। यह सातों धातुओं, ओज और स्तन्य (दूध), की वृद्धि करता है, आंख, केश और शरीर के वर्ण के लिए हितकारी, बलवर्द्धक, संधान करने वाला, रक्त को शुद्ध करने वाला, बाल-वृद्ध और चोट से पीड़ित व्यक्ति को लाभ पहुंचाने वाला, प्यास-बेहोशी-दाह का नशक, इन्द्रियों और मन को प्रसन्न करने वाला और कृमि पैदा करने वाला है।

मधुर रस के अतिसेवन से आलस्य खांसी, दमा, उल्टी, मुंह का स्वाद अतिशय मीठा होना, स्वरभंग, क्रिमि, गलगण्ड, अर्बुद, हाथीपांव, बस्तिरोग, गुदोपलेप और आंखें आना आदि रोग हो सकते हैं।

मधुर गण में गन्ना, अंगूर, किशमिश, महुआ के फूल, शहद, गुड़ और दूध जैसे द्रव्यबताये गये हैं।

अम्ल रस : अम्लरस से मुंह में स्राव उत्पन्न होते हैं और वह स्वच्छ हो जाता है। इसमें सिहरन पैदा होती है और दांतों में अजीब- सा अनुभव होता है। आस्वादन से आंखें संकुचित हो जाती हैं। अम्लरस स्निग्ध और लघु होता है। इसका विपाक अम्ल होता है। यह उष्णवीर्य है। अम्लरस पाचक, दीपन, वातहर, वात का निस्सारण करने वाला, पेट में दाहक, बाहर शैत्य कारक, नम करनेवाला और हृदय के लिए हितकारी होता है। अम्लरस के अतिसेवन से रोमांच होता है, कफ पतला होता है, शरीर शिथिल होता है। अतिसेवन से चोट खाया हुआ स्थान विकृत होकर उसमें मवाद भर जाता है तथा गले और हृदय में दाह होता है। आंवला, इमली, अनार, दही, मट्ठा आदि अम्लरस की वस्तुएं हैं।

लवण रस : जीभ में इस रस के लगते ही स्राव प्रारम्भ होता है। जीभ और गालों में दाह पैदा होता है। इस रस का विपाक मधुर होता है। यह उष्णवीर्य है। लवण रस स्निग्ध और गुरु होता है। लवण रस स्रोतों को स्वच्छ करता है, दोषों का पाचन करता है, शरीर के घटकों का वियोजन करता है नमी और शिथिलता देता है। साथ ही यह उष्ण, शोधक और मृदुता उत्पन्न करनेवाला और अन्य सभी रसों का विरोधी है।

लवण रस के अतिसेवन से खुजली, चकत्ते, सूजन, विवर्णता, दाह आदि पैदा होते हैं, मुंह में छाले पड़ते हैं, आखें आ जाती हैं, पुरुषत्व में कमी आती है और रक्तपित्त, वातरक्त और अम्लपित्त संबंधी रोग हो जाते हैं।

समुद्री नमक, पहाड़ी नमक, कालानमक आदि लवण रस की वस्तुएं हैं।

तिक्त रस : यह मुंह को स्वच्छ करता है और जीभ द्वारा रसग्रहण के कार्य में अवरोध पैदा करता है। तिक्त रस अग्निदीपक, रुचि उत्पन्न करने- वाला, दोषों का छेदन और शोधन करने वाला, खुजली-चकत्ते-ज्वर-बेहोशी-प्यास का नाशक, स्तन्य (दूध) का शोधक, मल-मूत्र-नमी-मेद-वसा-मवाद का शोधक है।

तिक्त रस के अतिसेवन से गर्दन और अन्य अंगों में अवरोध होता है, मुख टेढ़ा होता है, सरदर्द, चक्कर, पीड़ा और मुंह बेस्वाद होता है। चिरायता, नीम,

कुटकी, चन्दन, हल्दी आदि तिक्तगण में है। इनका विपाक कटु है। ये शीतवीर्य, रूक्ष और लघु हैं।

कटु रस : यह मुंह में दाह पैदा करता है । इससे जीभ, मुंह, आंख और नाक से स्राव होने लगता है। इसका विपाक कटु होता है। यह उष्णवीर्य, रूक्ष और लघु है। यह रस अग्निदीपक, अन्न और दोषों का पाचक, रुचि उत्पन्न करने वाला, शोधक, आलस्य, कफ, कृमि, विष, कुष्ठ, खुजली को दूर करने वाला, सन्धियों का विच्छेदक, स्तन्य, मेदें व शुक्र को नष्ट करता है।

इसके अतिसेवन से चक्कर आना, नशा, गला–तालु ओष्ठ सूखना, दाह, गर्मी, बलनाश, कंम्र आदि होते हैं तथा हाथ–पैर–पीठ आदि में वातशूल आदि होता है।

कटुगण में हींग, कालीमिर्च, लालमिर्च आदि परिगणित हैं।

कषाय रस : यह जीभ को भारीपन देता है, गले और अन्नमार्ग में संकोच पैदा करता है। इसका विपाक कटु होता है। यह शीतवीर्य, रूक्ष और गुरु है।

यह मल को बांधने वाला, स्तंभक, शोधक दोष और जलांश को सु[illegible]वाला, लेखन, घाव भरने वाला है।

कषाय रस के अतिसेवन से हृदय में पीड़ा, गले में खुश्की, पेट फूलना, वाणी में विकार, गर्दन अटकना आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

कषायगण में हरड़, कत्था, मोती, प्रवाल, उदुम्बर आदि परिगणित हैं।

टिप्पणी :– संस्कृत में कटु कालीमिर्च के स्वाद और तिक्त नीम के स्वाद के अर्थ में प्रयुक्त होता हैं। हिन्दी में कटु का पर्यायवाची तीता और कडुआ दोनों ही प्रचलित हैं। परन्तु इन दोनों में भेद है। ऊपर कटुरस और तिक्त रस संस्कृत के अनुसार प्रयुक्त हैं।

(क्रमशः)

लाभकारी अविपत्तिकर चूर्ण

प्रायः ७० प्रतिशत व्यक्ति पेट की तकलीफों से परेशान रहते हैं। इन में पाचन प्रणाली की तकलीफें ज्यादा होती हैं। इनसे मनुष्य परेशान– सा रहता है, क्योंकि हर व्यक्ति यह चाहता है कि उसकी पाचन व्यवस्था सही रहे ताकि जी भर के खा सके, लेकिन पेट की तकलीफों की आशंका से वह डर–डरकर खाता है। यदि पाचन व्यवस्था सही रहती है तो जो कुछ भी खाया या पिया जाता है वह सीधे स्वास्थ्य को बनाता है यदि पाचन कमजोर होगा तो इससे शरीर भी कमजोर होगा क्योंकि खाया हुआ आहार शरीर की धातुओं का निर्माण सही रुप से नहीं कर पायेगा।

पेट की प्रमुख तकलीफें:

कब्ज – गैस बनना व इसके कारण पेट का फूला व भरा रहना।

पेट में जलन व खट्टी डकारें आना कभी–कभी सिफ डकारें ही आया करती हैं।

– पेट में दर्द , कभी– कभी उल्टी का हो जाना।, पित्त की अधिकता से बार–बार उल्टियां होती हैं।

– चक्कर , दिमाग में गर्मी

इन तकलीफों से छुटकारा पाने के लिये हम एक चूर्ण बनाने की विधि बता रहे हैं जिसको आसानी से घर पर ही तैयार किया जा सकता है व यह चूर्ण घर पर रखने योग्य भी है। इस चूर्ण में निम्न औषधियां पड़ती हैं:–

सोंठ १ तोला , पीपल १ तोला, काली मिर्च १ तोला, हरड १ तोला, बहेड़ा १ तोला, आंवला १ तोला, नागरमोथा १ तोला , विड्नमक १ तोला, वायविडंग १ तोला, छोटी इलायची १ तोला , तेजपत्ता १ तोला, लौंग ११ तोला, निशोथ की जड़ की छाल ४४ तोला , मिश्री ६६ तोला।

इनमें से मिश्री को अलग कर शेष औषधियों को साफ इमामदस्ते द्वारा कूटकर, फिर चलनी अथवा महीन साफ कपड़े से छानकर रख देते हैं, मिश्री व लौंग को अलग कूट छान कर सबको साथ मिलाकर साफ शीशी में भरकर रख देते हैं इस तरह से चूर्ण तैयार हो जाता है।

इस चूर्ण में पड़ने वाली औषधियां अलग–अलग प्रकार से अपना असर शरीर पर दिखाती हैं। जैसे सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, पाचक रसों का सही मात्रा में निर्माण करती है व आमाशय में खाये आहार को अच्छी तरह से पचौती भी है। हरड, बहेड़ा, आंवला, गैस नहीं बनने देता तथा कब्ज भी नहीं होने देता वायविडंग पेट में कीड़ों को नहीं ठहरने देती। छोटी इलायची, मिश्री, लौंग रुचिकर हैं तथा भूख बढ़ाती हैं तथा आमाशय में बढ़े हुये पित्त को घटाती है। तथा स्वाद में मधुर तासीर में शीतल होने के कारण यह चूर्ण पेट की जलन, खट्टी डकार आदि लाभकर हैं।

प्रयोग विधिः– इस चूर्ण का प्रयोग भोजन ३ घंटे पहले करने से पेट की गैस, बाहर निकल जाती है।

मात्रा:–

वयस्क पुरुष के लिए इसकी मात्रा ३ ग्राम है। जिनको ज्यादा तकलीफ हो वो तीन बार भी इसको ले सकते हैं। वैसे दिन में दो बार ले सकते हैं।

विशेष:–

जिनको पतले दस्त की शिकायत हो वे यह चूर्ण लें, आंव वाले दस्त में यह चूर्ण लाभकर है।

वनौषधियों का संग्रह

वै. कृष्ण चन्द्र भूषण, चंडीगढ़

पिछले अंक से हमने वनौषधियों के संग्रह–संरक्षण संबंधी यह स्तंभ इस आशा से शुरू किया है कि पाठक इस जानकारी के अनुसार उपलब्ध वनस्पतियां एकत्र करके सुखाकर रख लेंगे ताकि वर्ष में फिर कभी उनकी आवश्यकता पड़ने पर उनका उपयोग किया जा सके।

वन पलाण्डु

प्रयोज्य अंग - कंद

संग्रह तथा संरक्षण - इसके कंदों को निकालकर छोटे–छोटे टुकड़े काटकर सुखा लें। सुखाकर इसी तरह या उनको कूटकर पाउडर बनाकर रख लेना चाहिए।

प्रयोग- श्वास, हृदय–विकार में लाभदायक है तथा गोंद के लिये निर्यात किया जाता है।

नीम

प्रयोज्य अंग – तने और जड़ की छाल, बीज, फूल, पत्ते और गोंद अर्थात सभी अंग प्रयोग में आते हैं। फूलों के संग्रह के बारे में हम पहले लिख चुके हैं। अगस्त मास में इसके बीजों का संग्रह किया जाता है।

बीजों का संग्रह तथा संरक्षण – स्वयं नीचे गिरे बीजों को एकत्रित कर रात भर पानी में भिगो कर रखें। सुबह हाथों से खूब मलकर छिलके और गूदे को अलग कर बीजों को पानी से धोकर सुखा लें। पूर्ण रूप से सूख जाने पर ऊपर का सख्त छिलका उतार कर अन्दर की गिरी को सुरक्षित रख लें या सख्त छिलके सहित ही रख लें। और प्रयोग के समय गिरी निकाल लें।

प्रयोग - चर्म रोगों में सेवन या बाहरी प्रयोग सेलाभदायक है। साबुन तथा कृमिनाशक द्रव्यों के उद्योगों में भी काम आता है।

गुड़हल – जपा कुसुम

प्रयोज्य अंग– फूल।

संग्रह तथा संरक्षण - फूलों को एकत्रित कर छाया में सुखाकर संग्रह कर लें। परन्तु फूलों को भली–भांति सुखा लें अन्यथा वे काले हो जायेंगे और किसी काम के न रहेंगे।

प्रयोग - गर्भ निरोधक है तथा केश वर्द्धक तेलों में प्रयुक्त होता है।

कुटकी –कडू

प्रयोज्य अंग – मूल

संग्रह तथा संरक्षण – क्योंकि इसके पौधे पर्वतीय भागों में स्वयं जात होते हैं अतः नीचे इसकी जड़ों का संग्रह जुलाई और अगस्त में ही प्रशस्त रहता है। इसकी लम्बी –लम्बी जडों को खोदकर पानी से धो छोटे–छोटे टुकड़े कर सुखा लें। सुखाने से पहले जड़ों के साथ लगे बारीक रेशे हटा देने चाहिये।

प्रयोग – यह कटुपौष्टिक के रूप में प्रयुक्त होता है तथा यकृत के लिए बल्य है अतः पाण्डु में लाभदायक है।

सुरंजान

प्रयोज्य अंग – बीज तथा कंद।

संग्रह तथा संरक्षण – इसके बीज जुलाई अगस्त में जब वे पक जाते अवस्था में होते हैं, संग्रह किये जाते हैं। एकत्र कर सुखा साधारणतया संग्रहीत करें।

प्रयोग – रेचन के लिए तथा आमवात व सन्धिवात में प्रयोग होता है।

अपने आंगन में

वर्षा ऋतु में उपयोगी पौधे

वर्षा काल के आते ही ऋतु में एकदम बदलाव आता है। आर्द्रता बढ़ने और वर्षा होने के कारण अंकुरण के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा होती हैं। बड़े पेड़ों को भी गर्मी से राहत मिलती है। इस मौसम में हम अपने आसपास की रिक्त भूमि का सही उपयोग कर सकते हैं। हम नीचे कुछ वनौषधियों का वर्णन कर रहे हैं, जिन्हें पाठकगण लगाकर लाभ उठायेंगे।

अदरक

अदरक जहां एक ओर महत्वपूर्ण वनौषधि है, वहीं रोजमर्रा काम आने वाली एक सब्जी भी है।

भाषा भेद से नाम – हिन्दी–*अदरक*, बं.–*आदा*, म.–*आले*, ते– *अल्लमू*, कन्न– *हस*[illegible]ल.– *इंची।*

उपजाने के लिये अनुकूल परिस्थितियां – उपजाने के लिये गर्म और आर्द्र मौसम अनुकूल होता है। जून में बोकर नवम्बर–दिसम्बर में खुदाई की जाती है। बुवाई के पांचवें माह के बाद से सातवें माह तक इसकी खुदाई की जाती है। लेट्राईट लोम मिट्टी जिसमें बालू की मात्रा कम हो, इसके लिये सर्वथा अनुकूल होती है। इसे छांह में भी बो सकते हैं।

प्रजातियां – प्रमुख प्रजातियों के नाम उनके उपजाने के स्थान पर रखे गये हैं।

१. खुरुप्पापाडी, २. थोडूपूम्मा, ३. वित्राडमनेताडी (ये सभी प्रजातियां हैं)

२. नरसापटट्म (आंध्र प्रदेश प्रजाति)

३. भराव (आसाम प्रजाति)

४. रिओ–डी–जिनेरो – एक महत्वपूर्ण नई किस्म है।

बोने का ढंग – मिट्टी को बार–बार पलट कर बारीक कर लेते हैं। प्रत्येक क्यारी में २० सेंमी. की दूरी पर छोटे–छोटे गड्ढे बना लेते हैं। दो क्यारियों के बीच ४५ सेंमी. की दूरी रखते हैं। प्रत्यके गड्ढे में मिट्टी भरकर सड़े गोबर की खाद डाल दी जाती है। प्रत्येक गड्ढे में एक गांठ बैठाई जाती है। जिसमें कम से कम दो आंखें हों। इसके तुरन्त बाद हल्की सिंचाई कर दी जाती है।

अदरक में भारी मात्रा में खाद पड़ती है। बोने से पहले मिट्टी में खूब सड़ी–गली खाद अच्छी तरह से मिला देते हैं। इसके उपरांत हरी पत्ती की सडी हुई खाद दो बार डाली जाती है। पहली बार बुवाई के तुरन्त बाद तथा दूसरी बार ४५ दिन के अन्तर पर।

वर्षा काल की फसल होने के कारण पहली सिंचाई के बाद आवश्यकता पड़ने पर ही पानी लगाते हैं। उत्तर भारत में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि क्यारियों में पानी जमा न रहे।

फसल की खुदाई – बोने के पांचवें माह के उपरांत से खुदाई आरम्भ की जा सकती है। दक्षिण भारत में ७ माह के उपरांत खुदाई करते हैं। परन्तु २६० दिन से ज्यादा नहीं छोड़ते हैं। खुदाई के एक माह पहले से पानी नहीं लगाते हैं। पौधा सूखने लगता है, ऐसी अवस्था में फावड़े से खुदाई करते हैं। गांठों को धोकर रखते हैं।

चमेली

यह वनस्पति अपनी सुगंध के लिए मशहूर है। औषधीय रूप में भी इसका उपयोग होता है।

भाषा भेद से नाम – सं.– *जाति* हि. च*मेली*, गु. *चम्बेली*, ते. *ज़ाजी* , ता. म*तमादाबानाम*, मल *पिच्चंकाम*, कन्न. *जाजि* , लै. ज*ैस्मिनम आफिसिनेलिस।*

जलवायु–चमेली पूरे भारतवर्ष में मैदानी स्थानों पर तथा पहाड़ी स्थानों पर निचले भागों पर लता के रूप में पैदा होती है।

उत्तर भारत के मैदानी भागों में इसमें ग्रीष्म व वर्षा काल में सुगंधित फूलों का गुच्छा आता है।

कैसे लगायें – चमेली कटिंग के द्वारा रोपित की जाती है। पालीथीन के बैगों में बालू, दुमट मिट्टी व गोबर की खाद को ३:१:१ के अनुपात में भरें और छायादार स्थान पर रख दें। चमेली के स्वस्थ पेड़ों से पतली–पतली कलमें एकत्र कर लें। कलमें १५–२० सेंमी. लम्बी हों। कलम की सबसे निचली पत्ती ब्लेड की मदद से निकाल दें। इन्हें प्लास्टिक के थैलों में इस प्रकार से लगायें की निचली गांठ के साथ–साथ कम से कम २ गांठें और मिट्टी में दब जायें।

प्रत्येक थैली में कलम लगाने से पहले और बाद में इतना पानी दें, कि मिट्टी अच्छी तरह से भीग जाये। पालीथीन की थैलियों को छायादार स्थान में रखे और पानी देते रहें। एक माह के बाद जड़ें निकल आती हैं और तब पालीथीन बैग को उस स्थान पर गाड़ दें जहां लता स्थाई रूप से चढ़ानी है।

नोट :– आधुनिक बागवानी में कलमों के लिए विशेष "हार्मोनों" का उपयोग करते हैं। बाजार में ये "सेराडिक्स" के नाम से मिलते हैं। चमेली की कटिंग को पानी में डुबा लें फिर सेराडिक्स पाउडर में स्पर्श कराकर रोपित करें। ये "हार्मोन" जड़ों को बनाने में सहायक होते हैं।

गिलोय

इन अमूल्य वनौषधि की आरोही लता बागों, जंगलों में अथवा पुराने पेड़ों से लटकती मिल जायेगी। अपने हृदयाकार पत्तों के कारण यह आसानी से पहचानी जा सकती है। आपके घर में या आसपास कोई नीम का पेड़ हो तो उस पर यह लता चढ़ाई जा सकती है। शीघ्र ही यह पेड़ पर स्वतः चढ़ जाती है।

भाषावार नाम

सं.–*अमृता, गुडूची,* हि.–*अमृता, गिलोय, जीवंतिक,* बं.– *गोलांचा,* मं. *और* गु.– *गुलवेल,* ते.– *तिपत्तिगि,* त.–*अमुजेम;* कन्न– *अमृतवल्ली,* मल.– *अमृतु,* ले.– *टीनोस्पोरा कार्डीफोलिया।*

उगाने की विधि

१. गिलोय की १ इंच मोटी, ६–७ इंच लम्बी रस्सीनुमा लता ले लें। इसे पेड़ पर तने के ऊपर लपेट दें और दोनों छोर हवा में छोड़ दें। यदि सम्भव हो तो तने पर इसे बांध भी दें। लता स्वतः बरसात में बढ़कर फैल जायेगी और एक सिरा जमीन तक छूकर जमीन पकड़ लेगा।

२. गिलोय की एक "हाथ लम्बी" एक इंच मोटी टहनी को पेड़ के नीचे इस प्रकार लगाएं कि एक दूसरे से ४५ सेमी. दूर टहनी के दोनों भाग अलग–अलग पूर्व निश्चित स्थान पर गड़े हों। दोनों गड्ढों में कलम लगाने के बाद पानी दे दें। १०–१५ दिन बाद प्रत्येक गांठ से नई शाखायें निकलेंगी जिन्हें हम पेड़ों पर सीधे चढ़ा सकते हैं।

आक का शर्बत

वैद्य हनुमान प्रसाद सोमंशे, रायपुर

आक के ताजे पत्तों को कूट कर रस निचोड़ लें। इस रस को थोड़ी देर पड़ा रहने दें। जब इसकी गाद नीचे बैठ जाये तो ऊपर का पानी निथार लें। फिर इस पानी में समभाग शक्कर मिलाकर पकावें। शर्बत की चाशनी आ जाने पर ठंडा कर बोतलों में भर लें। मात्रा– ६ मास के बच्चे को दो बूंद, एक से ९ साल तक के बालकों को क्रमानुसार ४ से ८ बूंद तक दिन में दो बार ऋतुकालानुसार उष्ण या ठंडे जल में मिलाकर पिलावें। इससे बालकों की कमजोरी दूर होती है। दांत सरलता से निकल आते हैं तथा उदर पीड़ा अफारा, अजीर्ण, लालास्राव, मुखपाक, कास, ज्वर, डब्बा आदि बाल रोगों की यह अक्सीर दवा है।

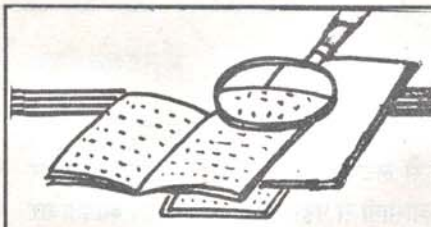

पत्र-पत्रिकाओं से

हिमाचल में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति लोकप्रिय

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति हिमाचल प्रदेश में काफी लोकप्रिय है और राज्य में २० प्रतिशत मरीज इसी पद्धति से इलाज कराते हैं।

राज्य में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का तानाबाना काफी विस्तृत है। इस समय हिमाचल प्रदेश में कुल ५४० आयुर्वेदिक संस्थाएं काम कर रही हैं जिनमें शिमला और पपरोला के दो बड़े क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अस्पताल विलासपुर, चम्बा, हमीरपुर, धर्मशाला, नाहन, ऊना और नालागढ़ के जिला अस्पताल पिकांग पीओ का अनुसूचित अस्पताल है।

राज्य के दूर दराज के इलाकों में ५२२ आयुर्वेदिक औषधालय काम कर रहे हैं। बवासीर और भगन्दर के इलाज में आयुर्वेदिक पद्धति काफी कारगर साबित हुई है। शिमला और पपरोला के आयुर्वेदिक अस्पतालों में गत वर्ष बवासीर और भगन्दर के ९०० मरीजों का इलाज किया गया।

अमरउजाला, 10 जुलाई1990

धूम्रपान ५० करोड़ को कालकवलित करेगा

विश्व-स्वास्थ्य -संघठन की हाल ही में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि अगले २५ वर्षों में ५० करोड़ व्यक्ति धूम्रपान से संबद्ध रोगों से काल कवलित होंगे।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठन के सांख्यिकीविद डा. एलेन लोयाज और जिचार्ड मिटो का कहना है कि हम लोगों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आयी है कि शताब्दी बदलते-बदलते जानलेवा कारणों में धूम्रपान शीर्ष स्थान पर होगा।

आज धूम्रपान के कारण ८००० मौतें प्रतिदिन हो रही हैं, पर जब तक आज के बच्चे जवानी को प्राप्त करेंगे, धूम्रपान के कारण २८००० मौतें प्रतिदिन होने लगेंगी।

पिटो ने यह बात 'तम्बाकू और स्वास्थ्य' विषय पर आयोजित एक सार्वभौम सम्मेलन में कही। उन्होंने कहा कि यदि वर्तमान रवैया बना रहा तो २०१५ ई. तक २० वर्ष की उम्र के २० करोड़ तथा ३० करोड़ वयस्क व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होने लगेंगे।इस शताब्दी के इस अंतिम दशक में भविष्यवाणी की गयी दो-तिहाई मौतें विकसित देशों ही में होंगी। अध्ययन से यह बात प्रकाश में आयी है कि जितनी मौतें होती हैं उनमें से २० प्रतिशत के पीछे कारण धूम्रपान होता है।पर २०२५ तक विकासशील देशों में ७० प्रतिशत मौतें धूम्रपान के कारण होने लगेंगी।विशेषज्ञों ने कहा कि मृत्यु के कारण के रूप में तम्बाकू एड्स से बड़ा कारण होगा।

डा. पिंटो ने कहा कि हमारे अनुमानों के संबंध में किंचित शंका नहीं की जा सकती क्योंकि ये बड़े विश्वस्त आंकड़ों पर आधारित हैं।

धूम्रपान से मोतियाबिन्द

'ब्रिटिश मेडिकल जर्नल' में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि चिकित्सा के क्षेत्र में शोध करने वालों ने पहली बार धूम्रपान और मोतियाबिन्द के बीच पारस्परिक संबंध की स्थापना की है।

अभी तक उम्र को ही मोतियाबिन्द के पीछे कारण-रूप माना जाता रहा है, पर जान हार्किंस-विश्वविद्यालय के शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यदि व्यक्ति धूम्रपान छोड़ दे तो मोतियाबिन्द की आशंका ५० प्रतिशत कम हो जाती है।

मोतियाबिन्द आंखों के लैंस को अपारदर्शी, धूमिल तथा कठोर बना देता है। ऐसी स्थिति में शल्य चिकित्सा ही एक मात्र चारा रह जाता है। पर कुछ स्थितियों में धूम्रपान छोड़ने पर मोतियाबिन्द स्वयं अच्छा होने लगता है।

आरोग्य, जुलाई1990

मधु संचय

लुप्त हो रहे हैं प्राचीन भारतीय वृक्ष

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग ने ऐसे अनेक वृक्षों के लुप्त होने या लुप्त –प्राय होने की जानकारी दी है जो वृक्ष कभी भारतीय अरण्य संस्कृति के वैभव के प्रतीक रहे हैं। हमारे देश के वनों में वृक्षों के सौंदर्य की अमूल्य निधि भरी पड़ी थी। प्रकृति मास–प्रतिमास रंग–बिरंगी न जाने कितनी शोभा लुटाया करती थी, परंतु आज उनमें से अनेक शोभाकारी वृक्ष लगभग समाप्त होते चले हैं। उनकी प्राकृतिक छटा के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। ऐसे ही कुछ प्राचीन भारतीय वृक्ष हैं, अशोक, कदम्ब और रोहिड़ा ।

हमारे पूर्वज आज की पीढ़ी की तरह वृक्षों और वनों के प्रति उपेक्षा भाव नहीं रखते थे। वे प्राकृतिक सौन्दर्य के उपासक थे। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में स्थान–स्थान पर देवी–देवताओं और अवतारों के साथ वृक्षों का अनन्य संबंध रखा गया है।

अनके मूर्तियों में कदम्ब, अशोक और चम्पक–जैसे वृक्षों की पत्तियों और पुष्पों के गुच्छों से आवृत नारी को चित्रित किया गया है। इस शिल्प कला में वस्तुतः उस काल के मनुष्यों के उस प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण है, जो अशोक और कदम्ब जैसे फूल वाले वृक्षों और दैनिक जीवन के सुन्दर और सुखद पदार्थों के प्रति उनके हृदयों में समाया था।

सूरज 'जि द्दी' (साप्ताहिक हिंदुस्तान, 8 जुलाई1990)

मधुमेह में विशेष लाभकारी जामुन

मधुमेह के रोगियों के लिए जामुन अत्यधिक गुणकारी फल हैं। चिकित्सा जगत में जामुन की सबसे अधिक लोकप्रियता का कारण है कि यह मधुमेह में उपयोगी और कारगर औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है। जामुन की गुठली में 'जंबोलिन' नामक 'ग्लूकोसाइट' तत्व उपस्थित रहता है जो शरीर के 'स्टार्च' को 'शक्कर' के रूप में परिवर्तित नहीं होने देता। इसलिए 'मधुमेह की चिकित्सा' में रोगी की हालत सुधारने और उसके जीवन को कायम रखने के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सक जामुन की गुठली का चूर्ण खिलाते हैं। जामुन की गुठली का काढ़ भी मधुमेह को कम करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इससे बहुत लाभ होता है, क्योंकि इसके सेवन से रक्तगत और मूत्रगत शर्करा कम होती है। फलस्वरूप मधुमेह के रोगियों को 'इंसुलिन' के इंजेक्शन लगवाने की आवश्यकता नहीं रहती।

ललन कुमार प्रसाद, कादंबिनी, अगस्त १९९०

मधुमेह का इलाज है प्रकृति

मधुमेह से छुटकारा पाना हो तो पारंपरिक पौष्टिक भोजन अपनाएं।दुनियाभर के चिकित्सक अब यह तो जानते हैं कि रेशे से भरपूर फलीदार सब्जियां, छिलके समेत साबुत दालें और पारंपरिक भोजन से मधुमेह के रोगियों को काफी आराम पहुंचाना संभव है। भारत, जापान, आस्ट्रेलिया, मध्य अफ्रीका और वेस्टइंडीज जैसे इलाकों में लोगों की खुराक में आज भी रेशेदार भोजन की मात्रा अधिक रहती है। जबकि पश्चिमी देशों में मांस को छोड़ दें तो भोजन में रेशा ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। पश्चिमी देशों के लोग अधिकतर कारखाने में तैयार प्रोसैस्ड फूड का ही इस्तेमाल करने पर मजबूर हैं। भारत में स्थिति अभी इतनी खराब नहीं हुई है। प्रोसैस्ड और रेशेविहीन भोजन का रस लेने वाले पश्चिमी देश अब डाक्टरी सलाहों को मान कर पारंपरिक भोजन की ओर लौट रहे हैं। मधुमेह से छुटकारा पाने के लिए कड़वी चीज का सेवन अच्छा रहता है मेथी के बीज, करेला, देसी खीरा, जामुन का फल और गुठली और निंबोलियों का तेल मधुमेह के रोगियों के लिए खासतौर से फायदेमंद है।

रणवीर सिंह, ज़नसत्ता, ८ जुलाई १९९०

विज्ञान पहेली : दो

प्रथम पुरस्कार–जीवनीय के निःशुल्क अंक तीन वर्ष तक।
द्वितीय पुरस्कार–जीवनीय के निःशुल्क अंक दो वर्ष तक।
तृतीय पुरस्कार–जीवनीय के निःशुल्क अंक एक वर्ष तक।

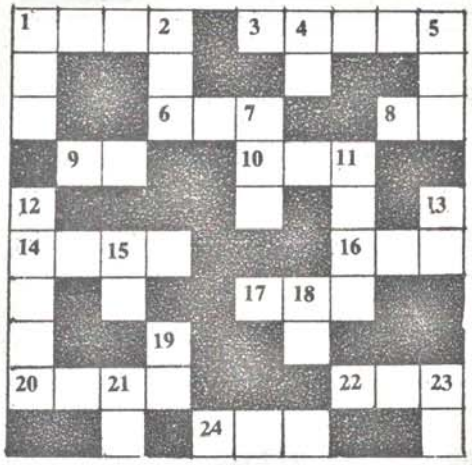

संकेत बांये से दांये

१– एक लोकप्रिय पत्रिका जो स्वास्थ्य से संबधित है। (४)
३– एक बीज रूप औषधि जो वातहारक है और मसालों में भी पड़ती है। (५)
६– दमे का एक प्रकार। (३)
८ – श्रवणेन्द्रिय। (२)
९ – एक वृक्ष जो वातावरण को शुद्ध करता है। (२)
१० –औषधि वर्ग जिससे पेट का मल अधोमार्ग से निकाला जाता है। (३)
१४– शक्कर की बीमारी। (४)
१६–इसमें आंखें पीली हो जाती हैं। (३)
१७–वात का शत्रु। (३)
२०–तीनों दोषों के कुपित होने की स्थिति। (४)
२२ –फल जिसके दानों से दांतों की उपमा दी जाती है। (३)
२४ –सूखी खांसी में गले को तर रखने हेतु औषधि। (३)

संकेत – ऊपर से नीचे

१– जब तक है, तब तक ही चिकित्सा हो सकती है। (३)
२– एक महत्वपूर्ण अंग जो रक्त और पित्त का निर्माण करता है। (३)
४- पानी। (२)
५– आंख। (३)
७– एक फलदार सब्जी जो ग्रीष्म ऋतु में होती हैं। इसका स्वाद कड़ुआ है। (३)
११–एक औषधि में विशिष्ट रूप से उपयोगी है। (४)
१२–एक औषधि जो मई के आरंभ में पक जाती है। इसकी फलियां औषधोपयोगी हैं। (५)
१३–पेट की गर्मी से मुंह में ———— पड़ जाता है। (२)
१५–पत्ते वाली सब्जी जो कड़ुई होती है। इसके दाने मसालों में पड़ते हैं। (२)
१८ ———— पात्र में रखा जल शुद्ध हो जाता है। (२)
१९–त्रिदोषों में प्रथम। (२)
२१–भोजन के बाद सेवनीय। इसका रस खांसी में लाभदायक है। (२)
२३ –धातुओं में प्रथम। (२)

कूपन भरकर भेजने का पता–
संपादक, जीवनीय विज्ञान पहेली,
सी–3/5 रिवर बैंक कालोनी
लखनऊ–226018

नियम और प्रतिबन्ध

प्रतियोगिता में उम्र का कोई बंधन नहीं है। इसमें सभी स्त्री–पुरुष पाठक भाग ले सकते हैं।

यहां छपे कूपन को भरकर हल के साथ लगाकर भेजी गई पहेली ही स्वीकार की जाएगी।

एक नाम से एक ही पूर्ति भेजी जा सकती है।

सर्वशुद्ध हल न आने, और सभी प्राप्त हलों में दो से अधिक गलतियां होने पर, संपादक–मंडल को पुरस्कार प्रदान करने अथवा न करने का अधिकार होगा। संपादक मंडल का निर्णय हर स्थिति में मान्य होगा। किसी तरह की शिकायत संपादक–मंडल से ही की जा सकती है। **किसी भी तरह का कानूनी दावा किसी भी न्यायालय में नहीं दायर किया जा सकता।**

सर्वशुद्ध हल अनेक आने पर पुरस्कार प्रथम आगत, प्रथम स्वागत के आधार पर दिया जायेगा।

संकेतों के उत्तर जीवनीय के विगत अंकों में यत्र–तत्र द्रष्टव्य हैं।

संकेतों के समक्ष कोष्ठक में हल की अक्षर संख्या दी गयी है।

पूर्तियां 31 अगस्त 1990 तक स्वीकार की जाएगी।

कूपन

जीवनीय विज्ञान पहेली : एक

नाम _____

पता _____

_____

जीवनीय में विज्ञापन देकर अपना संदेश हजारों पाठकों तक पहुंचाइए। साथ ही लोक स्वास्थ्य परंपराओं के संवर्धन के देशव्यापी आंदोलन में भी अपना अमूल्य योगदान दीजिए।

कृपया अपना आर्डर व विज्ञापन सामग्री (रंगीन / काला-सफेद चित्र / आर्ट पूल / ब्रोमाइड / निगेटिव आदि) निम्नलिखित पते पर भेजें। कृपया स्पष्ट निर्देश दें कि आपका विज्ञापन हिन्दी अथवा अंग्रेजी या दोनों अंकों में छपना है।

(विशेषांक में विज्ञापन देने पर 20% की छूट का विशेष लाभ उठाएं)

चंदे की दरें

वार्षिक	25-00
द्विवार्षिक	45-00
त्रैवार्षिक	65-00

(चंदा डाक खर्च सहित है)

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	छमाही	वार्षिक
पिछला आवरण (रंगीन)	5,000	12,000	20,000
अंदरूनी आवरण (रंगीन)	4,000	10,000	18,000
अंदर के पृष्ठ	2,000	5,000	9,000
अंदर का आधा पृष्ठ	1,000	3,000	5,000

जीवनीय
द्वैमासिक

ग्राहक चंदा अनुरोध फार्म

कृपया मुझे एक/दो/तीन वर्ष के लिए जीवनीय का ग्राहक बनाकर यह पत्रिका निम्नलिखित पते पर भेजने का कष्ट करें। मैं चंदे की सहयोग राशि रु. _____ एल.एस.पी.एस.एस.,जीवनीय, लखनऊ के नाम से नगद / ड्राफ्ट / चेक* / धनादेश, (नं. _____ दिनांक _____) भेज रहा हूं।

कृपया मुझे पत्रिका की एक प्रति नमूने के तौर पर भेजने का कष्ट करें हाँ ... नहीं ...

नाम _____ व्यवसाय _____

पता _____

_____ कोड _____

तिथि _____

भवदीय

हस्ताक्षर

*लखनऊ से बाहर के चेकों के लिए कृपया चंदे की राशि से 5 रु. अधिक का चेक भेजें।

आयुर्वेद पर ज्योतिष का प्रभाव

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

भारतीय वैदिक परंपरा ग्रह स्थिति से सदैव प्रभावित रही है। वैदिक यज्ञ सत्रात्मक होते थे और सत्रको ही संवत्सर, यज्ञ, प्रजापति आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। सत्रारम्भ सूर्य की स्थिति के आधार पर होता था। वेद ने सूर्य को तस्थित जगत का आत्मा कहा है। सूर्य तो पृथ्वी का जीवनदाता है ही, परन्तु चन्द्र अथवा सोम को भी वेद साहित्य में महत्ता प्राप्त है। सोम को वनस्पति और वनौषधियों का राजा कहा गया है। स्पष्ट है, सूर्य और चन्द्र अनेक प्रकार से वनस्पतियों को प्रभावित करते हैं और उसके द्वारा मनुष्य को भी प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार प्राचीन काल से ज्योतिष पिंडों का मनुष्य पर प्रभाव माना जाता रहा है। रोगों की उत्पत्ति, रोग प्रसार, रोग शमन, स्वास्थ्यवर्द्धन, आयुर्वृद्धि, औषधिविज्ञान इन सब पर ग्रहों का प्रभाव प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है। इसके अनुसार प्रत्येक रोग किसी विशिष्ट ग्रह स्थिति के कारण उत्पन्न होता है और उसका शमन उक्त स्थिति से उत्पन्न प्रभाव को दूर करने से हो सकता है। ग्रह स्थिति जन्य प्रभाव में परिवर्तन ग्रह स्थिति में परिवर्तन से भी हो सकता है और ग्रहों द्वारा उत्पन्न प्रभाव को अन्य उपचारों द्वारा शमित करने से भी। इसी कारण रोगों का शमन उपचार द्वारा किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रोगों की शामक औषधियां भी ग्रहों से प्रभावित होती हैं। यह आवश्यक है कि रोगजनक ग्रहस्थिति के प्रभाव का अध्ययन कर उसको निष्प्रभावी करने वाली औषधियों का प्रयोग करते हुए उपचार किया जाय, परन्तु प्रत्यक्ष में आज स्थिति भिन्न है। एक रोग में अनेक औषधियां दी जा सकती हैं। चिकित्सक स्वेच्छा से अपनी प्रिय औषधि विहित करता है, परन्तु सदैव ही औषधि लाभप्रद नहीं होती। अतः यह विचार अत्यन्त आवश्यक है कि रोगी मनुष्य की ग्रहस्थिति कैसी है, उसके रोग के ग्रहजन्य क्या कारण हैं और उस रोग तथा उस रोगी पर कौन सी वनौषधि अपने ग्रहगुण के कारण प्रभावी सिद्ध होगी।

प्राचीन काल में आयुर्वेद विद्या विशारद मुनियों ने इस विषय का विवेचन किया था, परन्तु वह पद्धति अब लुप्त होती जा रही है साथ ही आयुर्वेद का भी ह्रास दृष्टिगोचर हो रहा है। आज इस बात की आवश्यकता है कि उपर्युक्त तथ्यों का परिशीलन और अन्वेषण किया जाय और औषधि योजना तदनुरूप की जाय ताकि रोगी को अचूक लाभ प्राप्त हो सके।

यह चर्चा तब तक अधूरी रहेगी, जब तक कि प्राचीन प्रणेताओं द्वारा इस विषय में प्रणीत सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख न किया जाय। आयुर्वेद में सप्तधातु एवं त्रिदोष माने गये हैं। समस्त रोग, किसी भी कारण से जब धातुओं के समन्वय में विभेद उत्पन्न होता है और दोष वृद्धि होती है, तभी मनुष्य शरीर में उत्पन्न होते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ पुरुष का लक्षण निम्नलिखित हैं :–

समदोष : समाग्निश्च समधातुमलक्रिय : ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

इन लक्षणों से युक्त पुरुष संसार में दुर्लभ है। ज्योतिर्विज्ञान की दृष्टि से भी संवत्सर, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न और ग्रह स्थिति सभी दृष्टियों के अनुसार उत्तम योग में उत्पन्न पुरुष ही स्वस्थ हो सकता है। ऐसे पुरुष को आधि–व्याधि का भय नहीं हो सकता, परन्तु ईश्वर के अवतारों में भी विशिष्ट स्थितियां उत्पन्न होती रही हैं। अवतार भी सर्वोत्तम ग्रहस्थिति में नहीं हो सके। वास्तव में ऐसा कोई समय बिन्दु हो ही नहीं सकता, जब सभी दृष्टियों से योगकारक स्थिति हो। अतः पूर्णतः स्वस्थ पुरुष संसार में असम्भव प्राय है।

आयुर्विज्ञान के अनुसार वात, पित्त, और कफ ये त्रिदोष रोग– कारण

हैं। ये वायु, सूर्य और चन्द्रमा से प्रभावित होते हैं। इन की गति कालानुसार होती है। शरीर क्रिया, विकार, आहार के पाचन, सात्म्यीकरण, रोगोत्पादक कारण, रोगों का अवस्था भेद और साध्यासाध्यता सभी कालाश्रित हैं। विशिष्ट चक्र में होने वाले रोग–यथा विषम ज्वर–आर्तव चक्र आदि भी कालबद्ध हैं। यह काल दर्शन शास्त्र का अखंड काल नहीं है, अपितु पृथ्वी परिक्रमण में सूर्य, चन्द्र और अन्य ग्रहों का निरन्तर प्रभाव बना रहता है।

औषधियां भी कालाश्रित हैं यद्यपि संसार के सभी द्रव्य औषधि रूप हैं – *"नानौषधिभूतं जगति किंचिदद्रव्यमुपलभ्यते"* तथापि आयुर्वेद में वनस्पतियों का अपना विशिष्ट महत्व है। वनस्पतियों का बीजवपन, अंकुरण, पल्लवित होना, फूल और फल देना ये सभी काल पर आश्रित हैं। औषधि कालविशेष में ही पुष्ट होती है। यही कारण है सूर्य के पुष्य नक्षत्र में प्रवेश पर अनेक औषधियों के आहरण का विधान है।

पंचमहाभूतों द्वारा ही दृश्य तथा भूतात्मक शरीरों की उत्पत्ति होती है। मनुष्य के इन्द्रियविशेष पंचमहाभूतों की सत्ता के प्रतीक हैं। समस्त धातु पंचमहाभूतात्मक हैं। इतना ही नहीं मल और रस भी पंचमहाभूतों से उत्पन्न होते हैं। महाभूतों पर सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव निर्विवाद है। आयुर्वेद में त्रिदोषों को विशेष रूप से ग्रहण किया गया है और उन पर भी आयुर्विज्ञान के अनुसार –

"विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ।
धारयन्ति जगददे कफपित्तानिलातथा।।

ग्रहों का प्रभाव परिलक्षित है।

प्रत्येक औषधि अपने विशिष्ट गुणों के कारण ग्राह्य होती है। उसमें विशिष्ट गुण ग्रहों के प्रभाव के कारण ही उत्पन्न होते हैं। यदि मनुष्य में किसी विशिष्ट ग्रह की विशेष स्थिति के कारण रोगोत्पत्ति हो तो उसका शमन उसी ग्रह से प्रभावित औषधि के उपयोग से हो सकता है। औषधि योजना के ये दोनों प्रकार आयुर्वेद में मान्य हैं। स्पष्ट है कि यदि रोगजनक ग्रहस्थिति का विवेचन कर उसको दूर करने वाले ग्रहगुणों से युक्त औषधि की योजना की जाय तो निःसंदेह रोग से मुक्ति द्रुततर होगी।

ज्योतिष के अनुसार दो व्यक्तियों के परस्पर संबंध भी उनके जातक की ग्रह स्थिति पर अवलंबित हैं। इस आधार पर रोगी और वैद्य इन दोनों में भी ग्रहजन्य शुभ संबन्ध होना आवश्यक है और तभी वैद्यको यश और रोगी को स्वास्थ्य लाभ होता है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार प्रत्येक ग्रह विभिन्न वस्तुओं और वनस्पतियों का कारक होता है। और इस प्रकार राशियां और नक्षत्र भी विभिन्न वस्तुओं के कारक हैं। रोगोत्पत्ति में कारणभूत ग्रहस्थिति का विवेचन कर औषधि योजना में उपर्युक्तानुसार कारकत्व का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है।

अन्त में एक महत्वपूर्ण बात और कथनीय है। भारत में प्राचीन काल से कर्मवाद और भाग्यवाद के संबंध में विवाद चला आ रहा है, परन्तु भारतीय परम्परा ने सदैव कर्मवाद का ही पक्ष लिया है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसीलिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का ही उपदेश दिया और अन्त में अर्जुन ने *"स्थितोऽस्मि गतसंदेह : करिष्ये वचनं तव"* द्वारा कर्म को ही प्रधानता दी। इसी का दूसरा उदाहरण आयुर्वेद है। यदि भाग्य द्वारा ही रोगोत्पत्ति और रोगविनाश होता तो आयुर्वेद की आवश्यकता ही क्या थी ? **भिषक्कर्म कर्मवाद का प्रतीक है**। हमारा पूर्ण विश्वास है कि उपचार और उपाय से रोगों का विनाश किया जा सकता है। आवश्कता है समुचित उपाय योजना की। समुचित उपाय हेतु ज्योतिष द्वारा भिषकर्म में अतुलनीय विशेषता प्राप्त होगी इसमें कोई संदेह नहीं है।

पृष्ठ 26 का शेष – इसबगोल

उपयोग दवा के रूप में ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त पौधे के अर्क का प्रयोग होठों के फटने, फोड़े–फुसियों, शरीर के कटे भागों, चोटों व विषाक्त घावों के उपचार में भी किया जाता है।

औषधीय प्रयोग :– पुराने आंव वाले तथा साधारण दस्त व कब्ज, जैसे आंत के विकारों में इसबगोल की भूसी ज्याद्रा फायदा करती है। इसे ५ से १० ग्राम की मात्रा में लेकर दही के साथ दिन में दो या तीन बार लेना चाहिये। दही में अपनी इच्छा के अनुसार चीनी भी मिला सकते हैं।

कब्ज होने पर में रात्रि में खाना खाने के १५ मिनट बाद इसबगोल की भूसी ५ से १0 ग्राम की मात्रा में एक गिलास गुनगुने दूध के साथ लेना चाहिये। इससे आंतो में बिना कोई हानिकारक प्रभाव हुए सुबह खुलकर पेट साफ होता है। इस औषधि की विशेषता यह है कि इसका प्रतिदिन सेवन कर सकते हैं जबकि कब्ज को दूर करने वाली अन्य औषधियां आंतों को नुकसान पहुंचाती हैं। इसी कारण आधुनिक युग में भी इसबगोल की बनाई औषधियां धड़ल्ले से बाजार में लोकप्रिय हो रही है।

मस्तरामजी

2.

कथा : पं० काशीनाथ गोरे

चित्र : सन्दीप सेन

भूख कम लगना, कमज़ोरी, अरुचि, मलमूत्र, त्वचा और आँखों मे पीलापन.. यह इसके लक्षण है!
हाँ, यही सब बातें मस्तरामजी को भी थीं..मगर इस रोग से कैसे बचा जा सकता है?
“भूख लगने पर भोजन करना..”
“चटपटी चीजों से परहेज करना चाहिए.”
..ये नहीं चाहिए मुझे!
“क्षमता से थोड़ा कम खाना.”
..बस और नहीं!
और प्रकृति के लिए उचित भोजन करना चाहिए!
इन बातों का ध्यान रखें तो यह रोग नहीं हो सकता!
यदि रोग का प्रारंभ में ही उपचार न हुआ तो यह असाध्य भी हो सकता है
कभी-कभी यकृत से पित्तमार्ग में रुकावट हो जाने पर भी कामला (पीलिया) हो जाता है!
रुकावट या पथरी बन जाने पर सामान्यतया शल्यक्रिया ही सर्वोत्तम उपाय है।
अन्य प्रकारों में उपचार और पथ्य से रोग दूर हो जाता है.
अब बताइए.. इसका सुलभ उपचार क्या है?
क्रमशः

★ गैस और बदहजमी ★ जोडों का दर्द ★ पुरानी खांसी और जुकाम
★ बढ़े हुए कोलेस्ट्रोल से प्राकृतिक राहत के लिए

लहसुन के गुणों का शुद्धतम सार

गन्धरहित!

लहसुन। इसके औषधि तत्व प्राचीन आयुर्वेद से लेकर आधुनिक औषधि विज्ञान तक में मान्य हैं। वे तत्व जो कि गैस और बदहजमी दूर करने में सहायक हैं, जोडों के दर्द से छुटकारा दिलाने में मदद करते हैं, बार-बार होने वाली खांसी और जुकाम से मुक्ति दिलाने का काम करते हैं और कोलेस्ट्रोल के बढ़ने पर उसका स्तर कम करते हैं।

ये तत्व, यदि लहसुन पकाया जाए, समाप्त हो जाते हैं। या फिर कच्चा सेवन करें तो तेज गन्ध से परेशानी हो सकती है।

रैनबैक्सी की लहसुन की गोलियां अर्थात् गार्लिक पर्ल्स में कच्चे लहसुन का शुद्धतम सार खींचकर उसे गन्ध विहीन कर दिया जाता है और उसके औषधि तत्वों को आसानी-से-सेवन करने योग्य कैप्सूलों में बद कर दिया जाता है। रैनबैक्सी की गार्लिक पर्ल्स लीजिए और उसके सभी गुणों से लाभ उठाइये – प्राकृतिक तरीके से।

रैनबैक्सी के गार्लिक पर्ल्स

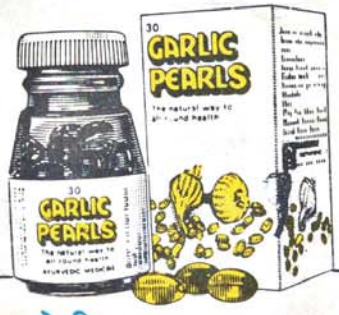

दिन प्रतिदिन प्राकृतिक राहत के लिए